आचार्य द्विवेदी : गाँव में

—अमरेश

0082
था

लेखक की अन्य रचनाएँ

ऐतिहासिक उपन्यास

१. राना बेनीमाधव
२. राजकलश
३. प्रवीन राय
४. हिना के हाथ
५. कछार के काँटे (प्रेस में)
६. क्रान्ति के कंगन („)

:o:

काव्य-संग्रह

१. जागो हिमालय
२. कल्पना के पंख (प्रेस में)

:o:

शोध-ग्रंथ

१. मसलानामा-कहरानामा (जायसीकृत)
२. उपखान विवेक (पहलवानदास कृत)

:o:

बाल-साहित्य

१. आँचल के दीप
२. देश का बेटा !

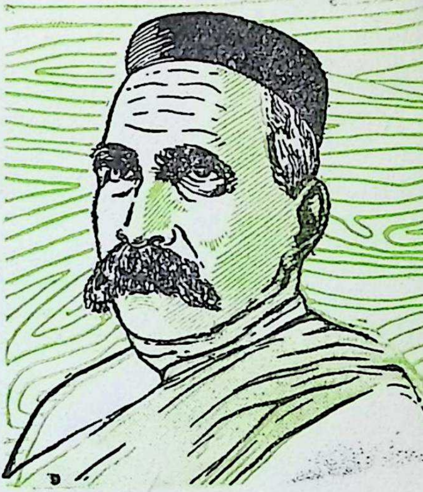

आचार्य द्विवेदी : गाँव में

SCANNED

T54830052

द्विवेदी जन्म-शती

के

अवसर पर प्रकाशित

आचार्य द्विवेदी :
गाँव में

✣

अमर बहादुर सिंह 'अमरेश'

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी–१

ACHARYA DWIVEDI : GAON MEN
Biography

प्रथम संस्करण
[२१००]
मई : १९६४

मूल्य : ३ रु. ५० पै.

9273
डा॰ डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय 9273

प्रकाशक
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो. बॉक्स नं. ७०, पिशाचमोचन
वाराणसी–१

मुद्रक
प्रकाश प्रेस
मध्यमेश्वर
वाराणसी–१

पूज्य पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी

को

आज जिन के कर्मठ करों में

आचार्य द्विवेदी की

'सरस्वती' सुरक्षित है।

डा० शिल्पी रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

यह व्यक्तित्व, यह कलम....

महावीर प्रसाद द्विवेदी--एक साधारण व्यक्ति थे कि माँ के पेट से जन्मे, धरती पर घुटनों चले, पढ़े, रोटी कमा कर खाई और सब की तरह मरे ।

आचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी--एक व्यक्तित्व थे कि समय की बहती धार पर अपना नाम लिख गये--अपनी याद छोड़ गये ।

वे उनमें न थे, जो पैदा होते ही महान होते हैं । वे उनमें भी न थे, जिन पर महानता थोप दी जाती है । वे उनमें थे, जो अपने प्रयत्नों से, अपने कामों से महान बन जाते हैं । उनके जीवन की कहानी अपनी नगण्यता को स्वयं अग्रगण्यता में बदलने की कहानी है ।

यह कहानी महत्वपूर्ण है; क्योंकि यह हरेक साधारण मनुष्य को निमंत्रण देती है कि वह भी असाधारण बने और अपनी साधारणता से व्यथित न होकर असाधारणता का महत्व प्राप्त करे, उसका आनन्द लूटे ।

यह कहानी महत्वपूर्ण है; क्योंकि यह साधारण को किसी जादू-टोने के मोह में नहीं फँसाती, किसी साधु-महात्मा के प्रसाद का माहात्म्य नहीं पढ़ाती, पूर्व-जन्म के पुण्यों का फल नहीं बताती और अपने उदाहरण से कहती है कि निरंतर चल, सही दिशा में चल, सही तरह चल, सफलता तुझे तेरी प्रतीक्षा करती मिलेगी ।

जानता हूँ, पूज्य द्विवेदी जी अपने कार्य में हमारे हिन्दी-साहित्य के आचार्य थे, हमारी पत्रकारिता के भीष्म थे; पर मानता हूँ कि अपने जीवन की कहानी के रूप में वे एक साहित्यकार, एक पत्रकार, एक उद्योगपति,

एक दूकानदार, एक वैज्ञानिक, एक अध्यापक, एक अधिकारी और एक मंत्री सभी के आचार्य थे, भीष्म थे, आदर्श थे और आचार्य हैं, भीष्म हैं, आदर्श हैं, यही कहूँ—रहेंगे भी।

उन की जीवन-कहानी का संदेश है--व्यवस्थित जीवन। उनके साहित्य और पत्रकार जीवन पर बहुत कुछ लिखा गया है और बहुत कुछ लिखा जायगा; पर भाई अमरबहादुर सिंह 'अमरेश' की यह पुस्तक आचार्य द्विवेदी को हमारे मन-मंदिर में जिस रूप में प्रतिष्ठित करती है, वह आज भी बेजोड़ है और कल भी बेजोड़ ही रहेगा।

हम कैसे लिखें ? यह लेखकों का प्रश्न है।

हम कैसे सम्पादक बनें ? यह सम्पादकों का प्रश्न है।

हम कैसे जियें ? यह नागरिकों का प्रश्न है। और मानना ही होगा कि नागरिकों के इस प्रश्न में सब-के-सब प्रश्न समाये हुए हैं; क्योंकि इस प्रश्न का विस्तृत रूप है यह कि हम कैसे जियें कि हमारा जीवन शुद्ध हो, उद्‌बुद्ध हो, वह हमारे लिए सुख-सुविधा का विधायक हो और हमारे देश के लिए पूर्णता का विधायक भी। भाई 'अमरेश' की इस पुस्तक में चित्रित आचार्य द्विवेदी का दुर्लभ जीवन-वृत्त इसी उद्‌बुद्ध और पूरक नागरिक जीवन का व्याकरण हमें देता है और यहीं यह पुस्तक जीवन अध्ययनों के ढेर में अलग है, अनुपम है।

यह आचार्य द्विवेदी को एक समग्र जीवन के रूप में हमारे सामने लाती है और इस मानवीय सत्य को भी कि जीवन की कृतार्थता कागजों में नहीं, धरती पर है और भारत के व्यक्तित्व-निर्माण की पूर्णता शहरों की चमक-दमक में नहीं, गाँवों की सुव्यवस्थितता में है। यह पुस्तक महत्वपूर्ण है, पर आज जब कि भारत के गाँवों को पंचायती राज के रूप में विकसित करने का चहुँमुखी काम देश में हो रहा है, तो यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसे हम नये भारत की 'ग्राम-गाइड' भी कहें, तो उचित होगा।

और इस महत्वपूर्ण पुस्तक के प्रणेता हैं 'अमरेश' । वे कवि हैं, लेखक हैं, वे जीवन के कवि हैं, जीवन के लेखक हैं । उस जीवन के नहीं, जो देश में गदर होने पर भी मस्जिद में शतरंज खेलता है, देश की दुर्गति को भूल कर भी पद और पैसे के पीछे जान देता है; या फिर कल्पना की रंग-रेलियों में खोया रहता है । 'अमरेश' उस जीवन के कवि हैं, उस जीवन के लेखक हैं, जो शोषण का शिकार होता है पर शोषक के सामने से कन्नी नहीं काटता, उसके सामने दुम हिला कर रियायत नहीं माँगता, उससे पंजा भिड़ाता है, बार-बार टकराता है ।

वे पद पर रहे हैं । पद उनके सामने रहे हैं, उन्होंने पद ठुकराया है, वे पद ठुकरा कर पीड़ित हुए हैं, पर उन्होंने अपना बाँकपन नहीं छोड़ा । तभी तो वे जीवन के कवि हैं, जीवन के लेखक हैं; पर कागज में नहीं, जीवन में, विचार में, आचरण में और यहीं मैं उन्हें प्यार करता हूँ ।

जीवन-विधायक आचार्य द्विवेदी को प्रणाम ।

जीवन-गायक कवि 'अमरेश' को बधाई ।

विकास, सहारनपुर
२४ अप्रैल, १९६४

—कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

अपनी बात

"हिन्दी-भाषा-भाषी जनता और साहित्यकार संभवतः इस बात से परिचित न होंगे कि आचार्य द्विवेदी जी सन् १९२२ से १९३८ तक--दौलतपुर ग्राम-पंचायत के सरपंच थे। इस अवधि में उन्होंने जिस कर्मठता से ग्राम-सेवा की है, प्रस्तुत लेखमाला उनके उसी विस्मृत जीवन-पक्ष का कीर्ति-स्तम्भ है ... !"

इन शब्दों के साथ **'आचार्य द्विवेदी : एक महान सरपंच'** लेखमाला का प्रथम लेख सूचना-विभाग, उ० प्र० की पत्रिका 'ग्राम्या' में सम्पादक श्री ठाकुरप्रसाद सिंह ने २७ सितम्बर, १९५९ को प्रकाशित किया। लेख-माला ने छोटे-बड़े सभी साहित्यकारों, अधिकारियों एवं सामान्य पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। ग्राम्या-संपादक तथा मेरे पास सैकड़ों पत्र आये। हमलोगों का उत्साह बढ़ा। लेखमाला चलती रही। पत्र और प्रोत्साहन मिलते रहे। अन्तिम लेख २८ अगस्त, १९६० को प्रकाशित हुआ। कुछ समय बाद 'ग्राम्या' तो मर गई, किन्तु उसके माध्यम से यह लेखमाला अमर हो गई। यही कारण है कि भाई ठाकुर प्रसाद सिंह ग्राम्या के इतिहास में इस लेखमाला का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना मानते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के अधिकांश लेख वही हैं जो 'ग्राम्या' में प्रकाशित हुए थे। कुछ लेखों का परिवेश बदल गया है और कुछ सर्वथा नवीन हैं। यही स्थिति पुस्तक के नामकरण की भी है। **'सरपंच द्विवेदी'** से अब उस का नाम **'आचार्य द्विवेदी : गाँव में'** कर दिया गया है।

'आचार्य द्विवेदी जन्म-शताब्दी' पर इस कृति के प्रकाशन के लिए अनेक मित्रों एवं साहित्यिक बंधुओं के पत्र प्राप्त हुए। मुझे प्रसन्नता है कि हिन्दी

प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी के संचालक श्री कृष्णचन्द्रजी बेरी ने उपयुक्त अवसर पर इस का प्रकाशन कर, इस 'साहित्यिक-यज्ञ' की सम्पन्नता में अपना महत्वपूर्ण योग दिया है। पूज्य पं० कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', डॉ० शम्भुनाथ सिंह तथा श्री बद्रीनाथ त्रिपाठी 'बच्चन' का भी कृतज्ञ हूँ--जिनकी शुभाकांक्षा एवं मेहनत इस कृति के साथ है।

अत्र अन्त में मैं हिन्दी-जगत् एवं ग्रामीण जनता के समक्ष अपनी यह कृति रखते हुए आशा करता हूँ कि इसके माध्यम से आचार्य द्विवेदीजी के विस्मृत जीवन-पक्ष का उचित मूल्यांकन किया जा सकेगा। आदरणीय पं० अमृतलाल नागर के इन शब्दों के साथ--"आचार्य द्विवेदी सरपंच लेख-माला, साहित्यिकों एवं सरपंचों दोनों के लिए पठनीय तथा संग्रहणीय है!" मैं अपने पाठकों के हाथों में इसे समर्पित करते हुए विदा लेता हूँ।

रामनवमी,
चैत्र शुक्ल, २०२१

—'अमरेश'

अनुक्रमणिका

१. बम्बई से दौलतपुर...पृ. १

२. आचार्य द्विवेदी : गाँव में...पृ. ६

३. दुबौना का इजलास...पृ. २४

४. एक वेद बढ़ गया...पृ. ३२

५. परम्परा से टक्कर...पृ. ४१

६. गाँव की फूट खाता हूँ...पृ. ४६

७. कर्मठ सरपंच : लापरवाह पंच!...पृ. ५७

८. अधिकार सीमा का प्रश्न...पृ. ६५

९. अबलाओं की पुकार!...पृ. ७३

१०. निर्माण की ओर...पृ. ८२

११. भुजंग-भूषण भट्टाचार्य...पृ. ९०

१२. अभियोग, अनुपस्थिति एवं सिफारिश...पृ. ९७

१३. यह नाबदान, यह गन्दी गलियाँ!...पृ. १०३

१४. पंचायत में 'आत्माराम'...पृ. ११२

१५. माल के मुकदमे...पृ. १२१

१६. स्वाभिमानी सरपंच...पृ. १३०

१७. रूपपत्र अथवा सरदर्द...पृ. १३८

१८. एक गाँव और
अखिल भारतीय सरपंच...पृ. १४६

१९. सरपंची के सत्रह-वर्ष...पृ. १५७

२०. आचार्य द्विवेदी :
अंतिम क्षणों में...पृ. १६६

२१. उपसंहार...पृ. १७६

—:०:—

आचार्य द्विवेदी : गाँव में

बम्बई से दौलतपुर

विक्टोरिया टर्मिनस !

बम्बई का विश्व-विख्यात रेलवे-स्टेशन ! प्लेट-फार्म पर लगे हुए विज्ञापनों के साइन-बोर्ड, सूचनाएं, पोस्टर और टाइम-टेबुल ! एक लड़का कुर्ता, धोती और टोपी पहने कोई सूचना पढ़ रहा था । उसकी दृष्टि सूचना-पटल पर अंकित-अक्षरों में उलझी थी । उसी समय पर किसी ने लड़के की बाँह पकड़ कर झक-झोरते हुए पूछा—"यहाँ क्या कर रहे हो ?"

लड़का चौंक उठा । उसने घूम कर देखा—एक पुलिस का सिपाही हाथ में डंडा लिये खड़ा था ! लड़के का शरीर कांप उठा । हृदय धड़कने लगा । फिर भी उसने संयत-स्वर में उत्तर दिया—"कुछ नहीं, यही नोटिस पढ़ रहा था । आज्ञा हो तो न पढ़ूँ ?"

"तुम कहाँ तक पढ़े हो !"

"अधिक नहीं पढ़ा हूँ । संस्कृत, फारसी और हिन्दी जानता हूँ ।"

"लेकिन यह नोटिस-बोर्ड तो अंग्रेजी का है ?"

"थोड़ी-बहुत अंग्रेजी भी जानता हूँ !"

"अच्छी बात है !" पुलिस के सिपाही ने घूरते हुए कहा—"मेरी एक दरख्वास्त अंग्रेजी में लिख दोगे !"

"लिख दूंगा !" लड़के ने उत्तर दिया—"कागज लाइये !"

सिपाही सामनेवाले दफ्तर में चला गया। वहीं से वह कागज, कलम-दावात ले कर बाहर निकला। लड़का बैठ कर लिखने लगा। वह एक नौकरी का प्रार्थना-पत्र था। जब वह सिपाही के बताये हुए आधार पर प्रार्थना-पत्र लिख चुका, तो बोला—"आखिर में नाम किस का रहेगा !"

"अपना नाम लिख दो !" सिपाही ने गंभीरता से उत्तर दिया।

"मेरा ?"

"हाँ, हाँ," सिपाही बोला—"हर्ज क्या है ? तुम्हें नौकरी मिल जायगी।

लड़के ने काँपते हाथों एवं उछलते हृदय से प्रार्थी के स्थान पर लिख दिया—"महावीर प्रसाद द्विवेदी !"

सिपाही दरख्वास्त ले कर दफ्तर के भीतर चला गया। थोड़ी देर में बाहर निकल कर बोला—"तुम परसों यहीं आ जाना। तुम्हें नियुक्ति-पत्र मिल जायगा। पहले टेलीग्राफी की ट्रेनिंग करनी होगी।" लड़का प्रसन्नतापूर्वक स्टेशन के बाहर निकल गया। घर पहुँचा, तो उसे रात भर नींद नहीं आई। प्रभात होते ही उसने अपने पिता से घटना का विवरण बताते हुए उनसे टेलीग्राफी ट्रेनिंग करने की स्वीकृति ले ली।

द्विवेदी जी के पिता का नाम था पं० रामसहाय दुबे। वह उन दिनों बंबई में नौकरी कर रहे थे। पिता जी पहले अंग्रेजी सेना

के एक सिपाही थे। १८५७ के विद्रोह में उन की सेना ने खुल कर भाग लिया। विद्रोह के दिनों में वह पंजाब में थे। वहीं से दिल्ली गये और भटकते हुए कई वर्षों बाद अपने गाँव पहुँचे। गाँव में अधिक दिनों तक न रह सके। नौकरी की तलाश में बम्बई गये। वहीं उन्हें 'ओगरहनी' (तकाजा) का काम मिल गया। द्विवेदी जी यहीं, अपने पिता के पास श्री देवी वाजपेयी के साथ आये थे। जब पिता तकाजे पर निकल जाते, तो वह रेलवे-स्टेशन पर जा पहुँचते। वहीं गाड़ियों का आना-जाना देखते; पोस्टर, साइन-बोर्ड पढ़ते और घूम-घाम कर लौट आते। पुलिस का यह सिपाहो द्विवेदीजी को रोज देखा करता था। इनके पहनावे से वह समझ गया था कि यह लड़का अवध का रहने-वाला है। वह सिपाही भी सुलतानपुर जिले का एक ब्राह्मण था। उसके हृदय में द्विवेदो जी के प्रति इस प्रकार के भाव कब, क्यों और कैसे उठे, कुछ कहा नहीं जा सकता। उस की कृपा से द्विवेदी जी को नौकरी मिल गई। वह टेलीग्राफी की ट्रेनिंग करने लगे। जूनियर एवं सीनियर ट्रेनिंग क्लासों का क्रमशः तीन-तीन मास का कोर्स था। द्विवेदी जी ने प्रार्थना-पत्र दिया कि मैं दोनों कोर्स ३ माह में एक साथ ही कर डालूँगा। उन्हें अनुमति भी मिल गई। बाद में अंग्रेज अधिकारी यह देख, दंग रह गये कि उन्होंने ६ मास का कोर्स ३ मास में ही समाप्त कर डाला। समाप्त ही नहीं किया, जब वह उत्तीर्ण हुए तो उन का स्थान प्रथम था। उस दिन उस अज्ञात सिपाही ने इस

खुशी में मंदिर में प्रसाद चढ़ाया और द्विवेदी जी का मुँह भी मीठा कराया। महावीर के लिये यह अज्ञात व्यक्ति भगवान् राम ही बन गया था।

द्विवेदी जी को वहीं नौकरी मिल गई। कुछ दिनों तक वह अस्थायी रूप से कार्य करते रहे। बाद में वह झांसी भेज दिये गये। यहीं, कर्तव्य की राख में स्वाभिमान की चिनगारी छिपाये हुए चाँदी के चन्द टुकड़ों पर रेलवे सुपरिन्टेन्डेन्ट झाँसी के कार्यालय में वह काम करने लगे। एक ओर गौरांग महाप्रभुओं का हास-विलास, क्रिकेट मैच और टेनिस का बल्ला—दूसरी ओर आफिस की फाइलें, टेलीग्रामों का उत्तर और पेट पालनेवाली कलम की स्याही में उलझी हुई दो बड़ी-बड़ी आँखें ! उसी समय उनका आफीसर २ मास की छुट्टी ले कर इंगलैंड चला गया। दूसरे अंग्रेज ने चार्ज संभाला। यह बहुत ही क्रूर व्यक्ति था। उसकी डाँट-फटकार, बेतुकी बातें तथा अनुचित व्यवहार से पूरा कार्यालय ऊब चुका था। द्विवेदी जी अब तक हेड-क्लर्क हो चुके थे। उनका वेतन भी दो-सौ रुपये से अधिक हो गया था।

संध्या का समय था। अंग्रेज अधिकारी ने द्विवेदी जी को आज्ञा दी कि—मुझे दिन में बैठने में कष्ट होता है। तुम आफिस के सभी कर्मचारियों को ले कर ८ बजे कार्यालय आ जाया करो। द्विवेदी जी थोड़ी देर तक खड़े सोचते रहे। फिर बोले—"आप आर्डर-बुक पर लिख दीजिये।"

"मैं ऐसा न करूँगा।" अंग्रेज अधिकारी ने कहा—"इसकी जरूरत भी नहीं है।"

"यदि आप ऐसा नहीं कर सकते, तो मैं भी मजबूर हूँ।"

"क्यों?"

"इसलिये कि मैं स्वयं का जिम्मेदार हूँ, पूरे आफिस का नहीं।"

फिर क्या था? साहब के सामने क्लर्क मुँह खोले? उस की इतनी बिसात? बात बढ़ती गयी। द्विवेदी जी ने आवेश में आकर त्याग-पत्र दे दिया। साहब ने दूसरे क्लर्कों को द्विवेदी जी के स्थान पर हेड-क्लर्क बनाना चाहा। सबों ने अस्वीकार कर दिया। परिस्थिति गम्भीर हो गई। इंगलैंड टेलीग्राम भेजा गया। पहलेवाला साहब वहाँ से लौट पड़ा। आते ही उसने द्विवेदी जी को बुलाया। उनके ऊपर प्रभाव छोड़ते हुए त्याग-पत्र वापस लेने को कहा। द्विवेदी जी घर पहुँचे। पत्नी से बोले—"मैंने अपना त्याग-पत्र दे दिया है। बड़े साहब तथा अन्य लोग कहते हैं वापस ले लो! तुम जैसा कहो।"

'क्या थूक कर भी चाटा जाता है?"

पत्नी के स्वाभिमानी शब्दों को सुनते ही द्विवेदी जी गर्व से फूल उठे। यह विद्योत्तमा की कालिदास और रत्ना की तुलसीदास पर फटकार थी। इसी फटकार ने कभी मेघदूत और रामचरित मानस जैसे ग्रंथों की सृष्टि की थी। कौन जानता था कि यही फटकार भविष्य में 'द्विवेदी-युग' का निर्माण करेगी!

द्विवेदी जी ने इस्तीफा वापस नहीं लिया। वह झाँसी से लौट आये। कानपुर (जुही) में मकान ले कर रहने लगे। जो गृहस्थी दो सौ रुपये में भी नहीं चल पाती थी, वही अब आठ आने पैसे में उनकी धर्म पत्नी चलाने लगी ! द्विवेदी जी सरस्वती के सम्पादक हो गये। कुल मिला कर उन्हें छब्बीस रुपये मिलते थे। तेईस रुपये वेतन और तीन रुपये डाक-खर्च ! माता जी प्रसन्नतापूर्वक इतने अल्प वेतन में काम चला रही थीं। आज लगता है कि हिन्दी-साहित्य में अभिनव युग का सूत्रपात करनेवालों की प्रेरणा यही पत्नियाँ ही थीं। चाहे वह तुलसी-युग हो, द्विवेदी-युग हो अथवा निराला-युग ! युग की धूप में, पत्नियाँ छाया की तरह खड़ी हैं।

पैसा मनुष्य से क्या नहीं कराता ? या यों कहिये कि पैसे के लिये मनुष्य क्या नहीं करता। द्विवेदी जी को पैसे का अभाव खल रहा था। मन में विचार उठा। 'रोमांस और कामुकता से परिपूरित कोई पुस्तक लिखूँ ?' मित्रों ने भी सलाह दी—'कुमार-संभव' का अनुवाद कौन खरीदेगा ? कोई फड़कती चीज लिखो ? द्विवेदी जी की इच्छा-शक्ति प्रबल हो गई। उनके मन में क्या-क्या विचार उठे, इस का वर्णन उन्हीं के शब्दों में पढ़िये—"...बहुत दिनों तक चित्त चलायमान रहा। अंत में मेरे मित्रों की जीत हुई। उनके प्रस्तावित नाम मुझे पसन्द न आये। मैं उनसे भी बांस भर आगे बढ़ गया। कवि तो था ही। मैंने चार-चार चरण वाले

लम्बे पदों में एक पुस्तक लिख डाली जिसके प्रत्येक पद से रस की नदी नहीं, बरसाती नाला जरूर बह रहा था। नाम भी मैंने ऐसा चुना कि उस समय उस रस के अधिष्ठाता को भी न सूझा रहा होगा। मैं ३०-४० साल पहले की बात कर रहा हूँ। आजकल की नहीं, आजकल तो यह नाम बाजारू हो रहा है। अपने बूढ़े मुंह के भीतर धंसी हुई जबान से आपके सामने उस नाम का उल्लेख करते हुए मुझे लज्जा मालूम होगी ; पर पापों का प्रायश्चित करने के लिये आप 'पंच' समाज रूपी 'परमेश्वर' के सामने शुद्ध हृदय से उन का निर्देश करना ही होगा। उसका नाम था—सोहाग-रात !''

इसी 'सोहाग रात' पर पैसों की बौछार की कल्पना द्विवेदी जी ने की थी। सोचा था—''...मेरे घर रुपयों की वृद्धि होने लगेगी। शीघ्र ही मोटर नहीं तो एक विक्टोरिया खरीद कर उस पर हवा खाने निकला करूँगा। देहात छोड़ कर दशाश्वमेध घाट पर, तिमंजिला मकान बनवा कर, या मोल ले कर वहीं, काशी-वास करूँगा !'' अकस्मात इस 'सोहाग-रात' का पता 'आचार्य-पत्नी' को लग गया। वह 'कराला-काली' बन गईं। द्विवेदी जी से उन्होंने पुस्तक छीन कर सदा-सर्वदा के लिये अपनी सन्दूक में दफना दिया ! आचार्य द्विवेदी की कल्पनायें 'शेख-चिल्ली' के घड़े की तरह चकनाचूर हो गईं। माता जी के देहान्त के बाद वह पुस्तक श्री कमला किशोर की धर्मपत्नी के हाथ लगी। उन्होंने भी माता जी के आदर्शों की

रक्षा करते हुए आज तक उस कृति पर किसी छाया नहीं पड़ने दी।

दौलतपुर से बम्बई, झाँसी और कानपुर भटकने के बाद द्विवेदी जी पुनः दौलतपुर आ गये।

उनके जीवन का प्रथम चरण था—बम्बई की टेलीग्राफी! दूसरा था—झाँसी का त्याग-पत्र, तीसरा था—कानपुर में रह कर सरस्वती का सम्पादन और चौथा था—दौलतपुर ग्राम-पंचायत की सरपंची! आचार्य द्विवेदी के जीवन के यही 'चार-चरण' हैं। कहना न होगा, भगवान वामन से वह एक चरण आगे थे।

• • •

आचार्य द्विवेदी : गाँव में

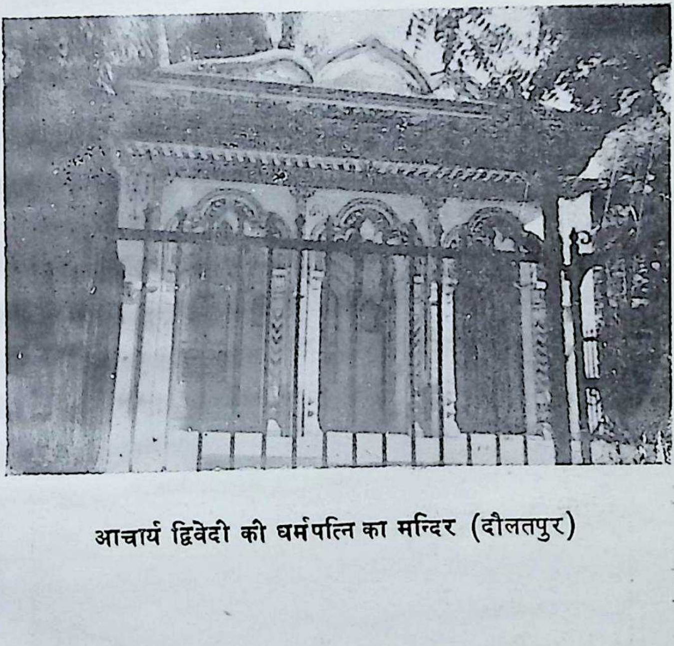

आचार्य द्विवेदी की धर्मपत्नि का मन्दिर (दौलतपुर)

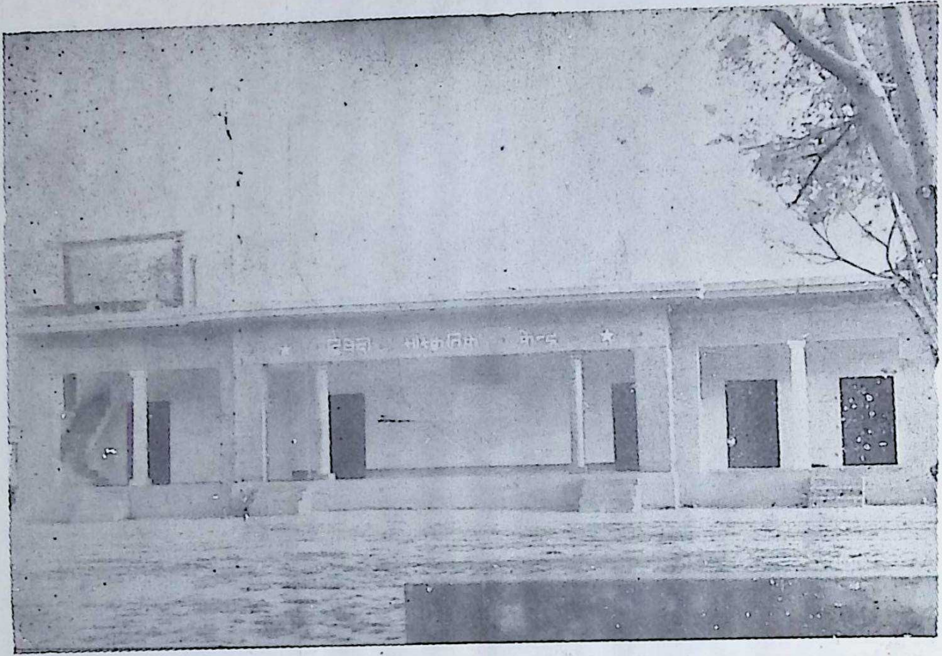

द्विवेदी स्मारक भवन, रायबरेली

आचार्य द्विवेदी : गाँव में

"आचार्य जी सरपंच कैसे बने ?" मैंने श्री कमला किशोर से पूछा—"अपनी इच्छा, अधिकारियों के दबाव अथवा ग्राम-वासियों की सेवा से प्रेरित हो कर।"

"स्वेच्छा से !"—भाई कमला किशोर जी ने उत्तर दिया—"उनके ऊपर किसी के दबाव का प्रश्न ही नहीं उठता। अन्तःप्रेरणा से ही वह सब कुछ करते थे। 'सरस्वती' से अवकाश ग्रहण करने के बाद वे मुंसिफ हो गये थे—विलेज मुंसिफ ! उसी समय पंचायत-एक्ट लागू हुआ था। उनके हृदय में ग्राम-सेवा की भावना पहले से ही बलवती थी। उन्होंने अधिकारियों को पत्र लिखा। पंचायत-एक्ट के विषय में जानकारी प्राप्त की। यह पत्र-व्यवहार लम्बे समय तक चला। जब योजना की रूप-रेखा उनकी समझ में आ गई तब उसे स्वीकार कर लिया। तब से अर्थात् १९२२ से वह जीवनपर्यन्त दौलतपुर के सरपंच रहे।"

"अस्वस्थता की दशा में भी वह पंचायत का कार्य करते थे ?"

"हाँ !" कमला किशोर बोले—"जब तक अशक्त, असमर्थ और शिथिल नहीं हो गये तब तक पद-भार वहन करते गये।

मृत्यु से पूर्व उन्होंने अपना चार्ज श्री कुंदनलाल जी को दे दिया था।''

''श्री कुंदनलाल ?'' मैंने आश्चर्य से पूछा—''वह तो···।''

''आपका अनुमान ठीक है !'' कमला किशोर जी ने कहा—''गाँव में पार्टीबंदी हो गई थी। फिर भी आचार्य जी ने इस भेद-भाव को महत्त्व नहीं दिया। वह कुंदनलाल जी को इस कार्य के लिए सबसे अधिक योग्य एवं उत्तरदायी व्यक्ति समझते थे।''

आचार्य जी की इस ''सर्वे पश्यन्ति भद्राणि···'' की महान् विचारधारा के समक्ष मेरा मस्तक श्रद्धा-नत हो गया। मुझे उनके सरपंच-जीवन की जानकारी बहुत पहले से थी। बैसवारे में उनके सरपंच एवं ग्राम्य-जीवन के अनेक संस्मरण भी सुन चुका था। फिर भी, मैंने उनके इस रूप को कभी प्रमुखता नहीं दी। मैं उन्हें स्वतंत्र भारत के सरपंचों जैसा समझता था। इससे अधिक उनकी सरपंची के संबंध में मेरी न कोई श्रद्धा थी, न महत्त्व ! वे संसार की दृष्टि में 'साहित्य-स्रष्टा' थे। युग उनके इसी रूप की वंदना भी करता है। उनका यह रूप पूर्णता को पहुँच चुका था। साहित्यकार 'सरपंच' भी हो सकता है ? सर-पंची के माध्यम से वह युग-परिवर्तन भी कर सकता है ? मैंने कभी इसे सोचा भी न था। द्विवेदी जी के महान् साहित्य-सर्जक ने मुझे उनके इस जीवन पक्ष पर सोचने ही न दिया। विचार बार-बार उठते रहे, मैं उन्हें दबाता रहा। फिर भी सरपंची

की कथाएँ सुनकर उसकी गहराई में पैठने की अभिरुचि काल-कवलित नहीं हुई। वह मुझे बराबर परेशान करती रही।

१६५६ में, मैं एक सरकारी कार्य से दौलतपुर गया। इसके पूर्व भी कई बार जा चुका था; किन्तु इस बार एक विशेष संकल्प लेकर गया। सबसे पहले श्री कुंदनलाल जी से मिला। वह उस समय काफी बूढ़े हो चुके थे, फिर भी शरीर हृष्ट-पुष्ट था। प्रेम एवं आत्मीयता तो उनकी पारिवारिक थाती-सी लगी। उन्होंने मुझे रात भर द्विवेदी जी के संस्मरण सुनाये। यह भी बताया कि मेरी और उनकी आपस में कभी पटी नहीं। मैं सदैव उनका प्रतिद्वन्द्वी रहा लेकिन वह महान् थे। मुझ जैसे तुच्छ व्यक्ति पर भी सदैव अपना स्नेह बरसाते रहे। वह मुझे कितना चाहते थे, इसका प्रमाण यही है कि अंत समय उन्होंने पंचायत का चार्ज मुझे ठीक उसी प्रकार दिया जैसे नागरी प्रचारिणी सभा को जीवन की अर्जित थाती !"

श्री कुंदनलाल जी की यह उक्ति मुझे भली लगी। नागरी प्रचारिणी सभा और द्विवेदी जी के संबंध सर्वविदित हैं, फिर भी उन्होंने अपनी साहित्यिक संपत्ति की उत्तराधिकारिणी एक-मात्र सभा को ही समझा। ऐसा ही व्यवहार उन्होंने स्व० कुंदनलाल जी के साथ किया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। यह उनकी महानता की महिमा है।

प्रातःकाल मैं द्विवेदी जी के कमरे में गया। यों इसके पूर्व भी इस कमरे का दर्शन कर चुका था। महामान्या महादेवी जी

के साथ इसी कमरे से मिले हुए आंगन में हम लोगों ने चित्र भी खिचाया था किन्तु इस बार यह कमरा बोलता हुआ-सा लगा। मैं अल्मारियों में पड़ी अस्त-व्यस्त पुस्तकों, लावारिस पत्रों की फाइलों, दीमकों से खाई हुई—प्रतिलिपियों को उलटने-पुलटने लगा। इन सभी वस्तुओं को देखकर मुझे दुःख भी होता था और जिज्ञासा भी ! रह-रहकर हृदय बोझिल हो उठता था। सरकारी काम छोड़कर इसी में उलझ गया। सच कहता हूँ—दुःख और जिज्ञासा का समन्वय जीवन में सर्वप्रथम इसी कक्ष में हुआ।

दुःख इसलिए था—आचार्य द्विवेदी जी के हाथ से सजाई, सँवारी एवं सुधारी गई इन वस्तुओं की यह दुर्दशा ? जिज्ञासा थी—इस कूड़े के ढेर में कोई 'रत्न' न मिल जाय। मैं एक-एक कागज उलटने-पुलटने लगा। भाई कमला किशोर 'बाडी-गार्ड' की तरह मेरे साथ लगे थे। मैं जीर्ण-शीर्ण कागजों को उलटता, उन्हें झाड़ता, पढ़ता और कमला किशोर के भय से उन्हें यथा स्थान रख देता। दीवाल में लकड़ी की आलमारी बनी थी। मैं वहाँ पहुँचा। एक फाइल हाथ लगी। मैंने उसे उठाकर झाड़ा। झाड़ते ही दीमकों के साथ गीली मिट्टी लिये हुए कुछ पन्ने धरती पर चू पड़े। वह व्यक्तिगत-पत्रों की फाइल थी। फाइल में पहला पत्र था—आदरणीय सेठ गोविन्ददास जी का ! मैं उसे उत्सुकता से पढ़ने लगा। पत्र में द्विवेदी जी के नाम एक पारसल भेजने का उल्लेख था। कुछ और व्यक्तिगत

प्रसंग थे अन्त में उनके ग्राम्य-जीवन (सरपंची) के कार्यों की प्रशंसा एवं स्वास्थ्य की मंगल कामना थी। पत्र महत्वपूर्ण था। मैंने उसके टुकड़े-टुकड़े जोड़कर पढ़े। पत्र समाप्त करते ही मुझे लगा, जहाँ मैंने किसी का व्यक्तिगत-पत्र पढ़ने की धृष्टता की है—वहीं मुझे मेरा 'रत्न' भी मिल गया है। मेरी आत्मा पुलक उठी। हृदय ने स्वीकार किया—"आचार्य जी सचमुच एक महान् सरपंच थे!" तभी मैंने भाई कमला किशोर से उक्त प्रश्न किया। उत्तर से जिज्ञासा बढ़ी, यह उसी जिज्ञासा का प्रतिफल है।

आचार्य द्विवेदी जी का गाँव की गोद में वैसा ही जीवन था जैसा विश्वविख्यात नाटककार शेक्सपियर का रहा है। शेक्सपियर ने भी साहित्यिक जीवन से अवकाश ग्रहण करने बाद अपने छोटे से ग्राम में शरण ली थी। ठीक वही स्थिति द्विवेदी जी की थी। गाँव में वह विश्राम करने नहीं गये थे। वह तो उसे अपनी कल्पना के साँचे में ढालने गये थे। उन्होंने नाना प्रकार के विरोधों के बावजूद भी जीवनपर्यन्त ग्राम-सेवा की, ऐसी सेवा जो अपने आप में एक इतिहास बन गई है।

गाँव में द्विवेदी जी की दिनचर्या नियमित थी। वह प्रातः ४ बजे उठते थे। शौच आदि से निवृत्त हो खेतों की ओर टहलने निकल जाते थे। इस प्रातःभ्रमण को वह अपनी बोली में 'सैर' कहते थे। यह सैर आज जिस दिशा में होती दूसरे दिन उसकी विपरीत दिशा में वह घूमने जाते। इस प्रकार प्रतिदिन

अपने खेतों, उनकी फसल और बाग आदि वह देख आते। वहाँ से लौटने के बाद दरवाजे पर खड़े हो जाते। वहीं खूँटी पर 'झाड़न' टँगा रहता। उससे अपने पैर और जूते झाड़ते। तब कमरे में प्रवेश करते। झाड़न अब भी हाथ में रहता। कमरे की अल्मारियाँ, तखत, पुस्तकें आदि झाड़कर हाथ-मुख धोते। शाम को ५ बजे डाक आती थी। आई हुई चिट्ठियाँ वह तखत पर बैठकर पढ़ते। उनका उत्तर लिखते और ७ बजे के पूर्व ही उन्हें डाकघर में भेजवा देते क्योंकि प्रातः डाक निकलने का यही समय था। चिट्ठियों से छुट्टी पाने के बाद जलपान करते। जलपान समाप्त होते ही समालोचनार्थ आई हुई पुस्तकें तथा अखबार पढ़ते। ठीक बारह बजे स्नान करते। जब वह स्नान करने जाते तो मजदूर काम बन्द कर देते। वे समझ जाते कि अब बारह बज गया है। छुट्टी का समय है। स्नान के बाद भोजन और तत्पश्चात् विश्राम करते। ठीक दो बजे पुनः उठते और कलम दावात लेकर प्रातः पढ़ी हुई पुस्तकों पर समालोचना और सम्मति लिखते। इसी समय पंचायत की बैठक भी करते। यह सब कार्य ४ बजे तक समाप्त करके पुनः सैर को निकल जाते। ५-३० बजे सैर से वापस आकर बाहर चबूतरे पर बैठ जाते। अब तक गाँव वाले भी आ जाते। आपस में मनोविनोद एवं चर्चाएँ होतीं। यह क्रम अँधेरे तक चलता रहता। इसके बाद शयन करते।

दौलतपुर एक साहित्यिक तीर्थ बन गया था। कोई-न-

कोई प्रतिदिन आया ही करता था। द्विवेदी जी संध्या समय जब बैठते तो आगत व्यक्तियों से खुल कर बातें करते। नव-प्रकाशित पुस्तकों पर वाद-विवाद करते। कविताएँ सुनते-सुनाते और मनोविनोद में ऐसा डुबा देते कि द्वार कहकहों से गूँज उठता। कभी-कभी रामचरितमानस की चौपाइयों का सस्वर पाठ भी करने लगते। विनोद के मूड में आते तो बीस बिस्वा वाले कनौजिया ब्राह्मणों को—जिनमें प्रायः बुजुर्ग ही रहते—बुलाकर पढ़ीस जी की कृति 'चकल्लस' की व्यंग्योक्तियाँ सुनाने लगते। सुनाते-सुनाते कहते—"आप लोग तो कूपमंडूक बने हैं। दुनिया आगे बढ़ चुकी है। यह पोंगापंथी अधिक दिनों तक न चलेगी। मेरे पास पुस्तकों का भंडार है। उसे पढ़िये! लेकिन आप लोग क्यों पढ़ेंगे? सोचते होंगे 'दुबौना' की किताबें पढ़ने के बाद कहीं स्नान न करना पड़े।" उनके इतना कहते ही अट्टहासों से द्वार गूँजने लगता।

गाँव के पढ़े-लिखे लड़के उन्हें घेरे रहते। वह उन्हें पढ़ने को पुस्तकें देते, अर्थ समझाते और कविताएँ सुनते। कभी-कभी चुटकी भी ले लते। एक बार श्री गङ्गासागर मिश्र उनके पास गये। मिश्र जी नवयुवक थे और कलकत्ते से कई साल बाद वापस आये थे। उन्हें देखते ही द्विवेदी जी ने कहा—"घड़ी है?"

"हाँ बाबा!" श्री गङ्गासागर बोले—"इस समय साढ़े पाँच बजे हैं।"

"यह तो मैं अपनी घड़ी में देख चुका हूँ।" द्विवेदी जी ने अपनी टेंट से गांधी जी की तरह घड़ी निकाल कर कहा—"यह देखो, मेरे पूछने का मतलब है कलकत्ते से आये हो। घड़ी है ?"

"हाँ बाबा !" श्री गङ्गासागर ने लजाते हुए कहा—"है।"

"और फाउन्टेनपेन ?"

"वह भी है !"

"ठीक !" द्विवेदी जी हँस पड़े—"आजकल के नवयुवकों को बीवी, बच्चों से ज्यादा ये दोनों चीजें जरूरी हैं। जिसके पास घड़ी और फाउन्टेनपेन न हो वह नवयुवक ही नहीं है।"

श्री गङ्गासागर आहत होकर रह गये। द्विवेदी जी उन्हें समझाते हुए बोले—"देखो बेटा, तुम तीन साल बाद परदेश से लौटे हो। जमाना खराब है। परिवार का भी ध्यान रक्खा करो।" फिर कुछ रुककर बोले—"कविता-वबिता लिखते हो या भूल गये ?"

"बाबा !" श्री गङ्गासागर ने कहा—"मैं आप को एक नई कविता दिखाने आया था।"

"अच्छा लाओ !" द्विवेदी जी बोले—"इस समय तो अँधेरा हो गया है। कल इसे देखूँगा।"

श्री गङ्गासागर कविता की प्रति दे कर अपने घर चले गये।

प्रभात हुआ। द्विवेदी जी सैर से लौट कर घर आये। छड़ी उठाकर श्री गङ्गासागर के यहाँ पहुँचे। उस समय उनके

हाथ में एक कागज था। श्री गङ्गासागर ने समझा, मेरी कविता ठीक करके लाये हैं। पर वहाँ कविता नहीं, कविता का उत्तर था। श्री गङ्गासागर ने द्विवेदी जी को जो कविता दी थी वह उन्हीं की प्रशस्ति में लिखी गई थी। द्विवेदी जी उससे प्रभावित हुए। श्री गंगासागर की कविता की कुछ पंक्तियाँ यों थीं :—

"श्रीमद् द्विवेदी वंशभूषण विश्व में विख्यात हैं।
इस ग्राम दौलतपूर की बस आप ही मरजाद हैं।
धन आप हैं इस ग्राम के, जन आप हैं इस ग्राम के।
हे नगर नायक तन नहीं, मन आप हैं इस ग्राम के!"

श्री गंगासागर मिश्र विख्यात लक्षण आचार्य एवं राज-कवि पं० सुखदेव मिश्र जी के वंशज हैं। उनके द्वारा की गई प्रशस्ति में द्विवेदी जी को स्वर्गीय मिश्र जी का स्मरण हो आया। उन्होंने प्रत्युत्तर में श्रद्धापूर्वक लिखा :—

"मिश्र वंश पूर्वज गुणी, श्री सुखदेव महान।
जो विभूति इस ग्राम की, दो उनहीं की जान।
कविता कर्ता के लिये, धन्यवाद शत बार।
सुख-समृद्धि उसकी बढ़े, होय सुजस विस्तार।

कविता पढ़ने के बाद श्री गंगासागर जी द्विवेदी जी के समक्ष नत-मस्तक हो गये। और आचार्य प्रवर ने उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया।

आचार्य द्विवेदी जी ने वृद्धावस्था में ग्राम-सेवा का जो संकल्प लिया वह बहुत ही प्रेरणाप्रद रहा। सरकारी अधिकारी ही नहीं, बड़े-बड़े नेता और साहित्यकार उनके इस कार्य की

प्रशंसा करते रहे। फिर भी, कुछ शुभचिंतक ऐसे थे जिन्हें इस वृद्धावस्था में द्विवेदी जी के काम अच्छे न लगते थे। वे उन्हें बराबर सलाह देते रहते कि आप पूर्ण विश्राम कीजिए। अवस्था अधिक हो गई है। व्यर्थ में गाँव के झमेले में पड़ने से कोई लाभ नहीं। द्विवेदी जी के इन शुभचिंतकों में थे—श्री इकबाल शर्मा 'सेहर'। जनाब सेहर साहब फतेहपुर के निवासी एक अच्छे शायर एवं लेखक थे। उन्होंने तो यहाँ तक कह दिया कि "आपको इसमें आनन्द आता है, मेरा तो जी ऊबता है। कहाँ आपकी यह जईफी, कहाँ पंचायत का झमेला ?"

द्विवेदी जी चुपचाप मौके की तलाश करने लगे। उस समय उन्होंने 'सेहर' साहब को कोई उत्तर नहीं दिया। सेहर साहब ने जब द्विवेदी-मेला के बाद 'जमाना' में एक लेख लिखकर उसे दौलतपुर भेजा तब द्विवेदी जी ने चुटकी लेते हुए उर्दू लिपि में ही पत्रोत्तर दिया—

"मेहरबानमन !

नवम्बर के 'जमाना' की कापी मिली। आपका लेख पढ़ा। यकीन कीजिए, वह मेरी इस जईफी की हालत में 'मकरध्वज' का काम देगा। उससे मेरी उम्र जरूर बढ़ जायगी। इसलिये कि मेरे मेहरबान दोस्त मेरी हस्ती को बेकार गई नहीं समझते। आपको बहुत-बहुत शुक्रिया।

खाकसार

महावीर प्रसाद द्विवेदी

यहाँ 'ज़ईफी' और 'मकरध्वज' दो शब्द ही सम्पूर्ण परिस्थिति स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं।

द्विवेदी जी की दैनिकी में संध्या, पूजन, उपासना और व्रत का कोई स्थान नहीं था। संध्या, पूजन को वह महाकवि जायसी की भाँति व्यर्थ समझते थे। जब कोई ऐसा करता तो वह उस पर व्यंग्य भी करते थे। विधुर जीवन के बाद उनका लगाव—रामचरितमानस और भागवत से अधिक हो गया था। वह लोगों को प्रायः रामचरितमानस पढ़ने की सलाह दिया करते थे। कभी-कभी अपने नौकर 'सूधू कोरी' को भी रामायण की चौपाइयाँ सुनाया करते थे। उनका कथन था कि जीवन में मैंने केवल सरस्वती की उपासना की, लक्ष्मी तो मेरे लिए मेरी धर्मपत्नी ही थीं। इसी भावना को मूर्तिमान करने के लिए उन्होंने लक्ष्मी, सरस्वती एवं अपनी धर्मपत्नी की एक साथ मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करके अपने जीवन-दर्शन का तत्व निचोड़ दिया। जब समाज ने इस पर व्यंग्याघात किया तो उन्होंने मंदिर में ताला लगा दिया।

सरस्वती के मंदिर में ताला ?

एक अनहोनी घटना थी। सरस्वती का उपासक; वीणापाणि की आराधना से अलग होकर उन व्यंग्य बोलने वाले ग्रामीणों का काया-कल्प कर रहा था, जिन्होंने उसे ताला लगाने के लिए विवश किया था। पर यह सरल काम न था। युग-युगान्तर से चली आनेवाली रूढ़िवादिता से टक्कर ले कर उसे

नया जीवन देना, द्विवेदी जी का व्रत था। इसी व्रत के माध्यम से वह गाँव में रहकर गाँव वालों की सेवा उन्हीं की बोली, रहन-सहन और सामाजिकता में कर रहे थे। वह यहाँ महावीर से 'महाबिरवा' और द्विवेदी से 'दुबौना' हो गये थे। कितना महान् त्याग था। जीवन के संस्कार पल्टा खा रहे थे और द्विवेदी जी उन्हीं के साथ-साथ समाज को पलट रहे थे। धीरे-धीरे उन्होंने इसी सामाजिक ढाँचे में अपने को ढालकर संस्कारों का परिष्कार करना प्रारम्भ किया। इस अवसर पर स्व० जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' जी का एक संस्मरण मुझे नहीं भूलता जिसे उन्होंने १९५२ में मुझे बताया था। घटना इस प्रकार है :—

"द्विवेदी जी कभी दौलतपुर में रहते और कभी कानपुर जुही में! एक दिन वे कानपुर पहुँचे। संध्या का समय था। घूमते-घामते हितैषी जी के मकान पर पहुँचे। हितैषी जी घर पर मौजूद न थे। द्विवेदीजी ने आवाज दी तो उनकी वृद्धा माता ने बताया कि वह नहीं हैं। द्विवेदी जी उलटे पैरों वापस चल पड़े। उन्हें जाते देखकर माताजी ने पूछा—"मैं क्या बता दूँगी कि कौन आया था ?" द्विवेदी जी माताजी का प्रश्न सुनते ही ठिठक गये। बोले—"बता देना, महाबिरवा आवा रहा है!"

रात में जब हितैषी जी वापस आये तो उनकी माता जी ने बताया—"बेटा! एक आदमी तुमसे मिलने आया था। कह गया है—बता देना, महाबिरवा आवा रहा है।" हितैषी जी

को समझते देर न लगी। वह तत्काल ही द्विवेदी जी के पास पहुँचे। बोले—"आचार्य जी, ठीक-ठीक नाम बता आये होते, मैं तो असमंजस में पड़ गया कि यह........कौन है ?"

द्विवेदी जी हंस पड़े। बोले—"जगदम्बा, मैंने ठीक ही बताया था। जानते हो, अब गाँव में रहता हूँ। वहाँ महावीर से 'महाबिरवा' और दुबे से 'दुबौना' हो गया हूँ।"

द्विवेदी जी की इस हँसी और इन शब्दों में कितनी पीड़ा थी ! वह नीलकंठ की तरह इस विष को पीकर पंचायतों के माध्यम से ग्राम-सेवा कर रहे थे।

गाँव में रह कर वह गाँव की ही बोली बोलते थे। ग्रामीणों से वह ठेठ वैसवारी बोली में बातें करते थे। कभी-कभी खड़ी बोली और अवधी की खिचड़ी भी पकाने लगते थे। इतना सब होते हुए भी मातृभाषा हिन्दी के प्रति उनके अंतस् में जो पीड़ा थी, वह कभी-कभी उभर आती थी। हिन्दी-भाषा-भाषी व्यक्ति जब अंग्रेजी बोलते या उन्हें अंग्रेजी में पत्र लिखते तो वह बरस पड़ते। फतेहपुर के श्री राजबहादुर लमगोड़ा जी हिन्दी बहुत कम जानते थे। वह द्विवेदी जी को प्रायः अंग्रेजी में पत्र लिखा करते थे। द्विवेदी जी कुछ समय तक तो इसे सहन करते रहे। एक दिन उनके संयम का बाँध टूट गया और वह श्री लमगोड़ा जी पर बरस पड़े—"Why this partiality for a language spoken six thousand miles

away ?[1] कहना न होगा कि श्री लमगोड़ा जी को अपनी विवशता के लिए द्विवेदी जी से क्षमा-याचना करनी पड़ी।

यही दशा उनकी ग्राम-वासियों के साथ थी। बाहर रहने वाले ग्रामीण जब गाँव आते और वे खड़ी बोली के टूटे-फूटे शब्दों में कहते—"हमारा साहब बोला……तब हमने छुट्टी का अरदास किया… ।" तब द्विवेदी जी की त्योरियाँ चढ़ जातीं। आवेश में कहते—"अरे ललुआ, जिस बोली को तुम्हारे माता-पिता, बीबी-बच्चे न समझ सकें, उसे वहीं के लिए छोड़ दो। गाँव की बोली बोलो !"

द्विवेदी जी लगभग १७ वर्षों तक सरपंच रहे। इस अवधि में उन्होंने जितने भी कार्य किये उनमें देश-प्रेम की झलक थी। पंचायत के कार्य में उन्होंने पूर्ण योग दिया था। सूचना-पत्र से लेकर फैसले की नकल तक वह अपने हाथ से लिखते थे। पंचायत की सभी बैठकों में भाग लेते थे। हिसाब-किताब रखते। कानून की दृष्टि में सभी को समान समझते। हाँ, उनके जजमेंट प्रायः अंग्रेजी में हुआ करते थे। इसका कारण यह था कि पंचायत के फैसलों की अपील जिलाधीश के यहाँ होती थी। जिलाधीश अंग्रेज होते थे। उनकी सुविधा के लिए द्विवेदी जी अपने फैसले अंग्रेजी में लिखते। इससे अपीलकर्त्ता को सच्चा न्याय

---

१. छः हजार मील की दूरी पर बोली जानेवाली भाषा के प्रति इतना मोह क्यों ?

मिलने में सरलता होती थी तथा अधिकारी भी तथ्यों से अवगत हो जाते थे।

इस प्रकार द्विवेदी जी अपनी नियमित दिनचर्या के साथ गाँव में अपना जीवन बिता रहे थे। उनका यह जीवन, संघर्ष एवं कर्मठता का जीवन था। वह रूढ़िवादिता के तूफान के समक्ष वक्षस्थल खोले खड़े थे और तूफान उन्हें झकझोरता हुआ आगे बढ़ने की कोशिश कर रहा था। द्विवेदी जी इस तूफान में निष्कंप, अविचल और अभय खड़े रहे। तूफान आया और चला गया किन्तु वह उनके चरण-चिह्न न मिटा सका। आज भी दौलतपुर के गलियारों में उनके पद-चिह्न बने हैं। तब नहीं, आज और अब समाज उन्हें पहचानने की कोशिश कर रहा है। मैं कह नहीं सकता, परिवर्तन के इस युग में उन्हें वह पहचान पायेगा अथवा नहीं !

समाज पहचाने या नहीं ! हिन्दी-साहित्य के पश्चात् द्विवेदी जी गाँव में जमे बैठे हैं। कोई उन्हें अलग नहीं कर सकता। देश के हर गाँव में अब 'द्विवेदी-युग' आ गया है।

• • •

दुबौना का इजलास

❖

आचार्य द्विवेदी जी का 'इजलास' किसी सरकारी न्यायालय की भाँति प्रातः १० बजे से नहीं लगता था। उसका समय अपराह्ण दो बजे का था। यह इजलास प्रति शुक्रवार या कभी-कभी सोमवार को लगता था। 'इजलास' शब्द का प्रयोग मैं जानबूझ कर इसलिए कर रहा हूँ कि उसकी कार्य-प्रणाली, न्याय का स्तर और संवैधानिकता तथा रोब-दाब किसी सरकारी न्यायालय से कम न था। प्रार्थना-पत्रों की भाषा, उन पर अंकित टिप्पणी और आदेश किसी प्रथम श्रेणी के सुयोग्य मजिस्ट्रेट की याद दिला देते हैं। गांव वाले भी उस ग्राम-पंचायत को 'इजलास' की संज्ञा देने लगे थे। सर्वप्रथम ग्राम के कुछ विरोधी तत्वों ने 'व्यंग्य' रूप में 'इजलास' शब्द का प्रयोग किया। बड़े-बूढ़ों की निगाह में वह "दुबौना का इजलास" हो गया। धीरे-धीरे इस शब्द का 'व्यंग्य-रूप' विलीन हो गया और वह वास्तविक 'इजलास' बन गया। "दुबौना का इजलास" जन-साधारण की दृष्टि में "बाबू महावीर प्रसाद साहब बहादुर का इजलास" कहलाने लगा। देखिये, एक प्रार्थनापत्र की प्रतिलिपि :—

"ब इजलास जनाब बाबू महावीर प्रसाद साहब बहादुर

सरपंच, दौलतपुर।

जनाब आली,

महावीर वल्द अमीरे कौम बनिया, साकिन हरीपुर ने मुबलिग २० रु० माह जुलाई, १९३५ ई० को कर्ज ले गया। जिस रुपया को तादादी २७ माह होते हैं और जिसका सूद मु० ८) रु० होता है। जिसमें मार्फत मातादीन सिंह मु० २ रुपये वसूल हो चुके हैं। २ रुपये वह खुद दे गया है। सूद मिनहाई करने के अलावा २४) बाकी रहते हैं। जिनका तकाजा कई बार किया। हीला-हवाला के सिवाय कुछ नहीं देता। इस वजह से यह नालिश हुजूरे-बाला पेश है।

तावेदार

(ह०) विसराम सिंह वल्द शिवराम सिंह

साकिन गहरौली

यह था द्विवेदी जी का इजलास और उसमें आई हुई फरियाद !

इस इजलास में पेशकार, अहलमद, मुहर्रिर और न्यायाधीश सब कुछ द्विवेदी जी ही थे। चपरासी का काम चौकीदार करता था। वह न आता तो 'पुकार' भी द्विवेदी जी स्वयं करते। न्यायालयों के इतिहास में यह अपने ढंग का अनोखा न्यायालय था। इसके लिए कोई भवन या विशेष इमारत के नाम पर द्विवेदी जी के मकान के सामने वाला खुला चबूतरा था। कभी-कभी यह इजलास उनके कमरे में भी लग जाता था।

द्विवेदी जी के इजलास में प्रार्थना-पत्र देने वाला फरियादी स्वयं आकर अपनी लिखित फरियाद कर जाता था। कुछ प्रार्थनापत्र रजिस्ट्री से भी आते थे। जो प्रार्थना-पत्र रजिस्ट्री से प्राप्त होते थे द्विवेदी जी उन पर अंग्रेजी में–Registered शब्द लिख देते थे। मुकदमे के रजिस्टर में क्रम से उसे अंकित करके वह पंचों को उसकी सूचना भेजते। इस सूचना-पत्र को द्विवेदी जी उस समय की प्रचलित न्यायालय की भाषा के अनुसार 'इत्तिलानामा' कहा करते थे। यह इत्तिलानामा चौकीदार लेकर पंचों के पास जाया करता था। पंच उसकी पुश्त पर हस्ताक्षर कर देते थे। चौकीदार के अभाव में कभी-कभी यह कार्य द्विवेदी जी के व्यक्तिगत नौकर—'सूघू कोरी' को करना पड़ता था। सूघू कोरी द्विवेदी जी का बहुत ही विश्वासपात्र नौकर था। ठीक उसी प्रकार जैसे प्रधान मन्त्री पं० नेहरू जी का 'हरी'। पंचों के साथ-साथ यह सूचना वादी-प्रतिवादी को भी प्रेषित की जाती थी।

पंच समय पर आवें, इसके लिए द्विवेदी जी की सख्त हिदायत थी। कभी-कभी तो वह 'इत्तिलानामा' में ही लिख देते थे—"गैरहाजिर न'हो जाइयेगा, हिदायत समझिये !" फलस्वरूप पंचों की इतनी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि वे अनुपस्थित हो सकें।

यह तो रही पंचों की बात।

वादी-प्रतिवादी भी कभी-कभी गायब हो जाते। अनुपस्थिति का प्रार्थना-पत्र प्राप्त होते ही द्विवेदी जी गैरहाजिरी के सही

कारण का पता लगाते। यदि कारण उचित होता, तो वह समय बढ़ा देते, अन्यथा प्रार्थना-पत्र अस्वीकृत कर देते। एक बार चहोतर ग्राम के वंशी यादव की पेशी ३ मई १९२८ को डिप्टी कमिश्नर के यहाँ थी। उसने एक सप्ताह पूर्व द्विवेदी जी को इसकी सूचना दी क्योंकि उसी तारीख को उसकी पेशी पंचायत में भी थी। वंशी ने अपने प्रार्थना-पत्र में लिखा—

"...सेवक ने अपना न्याय कमिश्नरी में होने को डिप्टी कमिश्नर साहब बहादुर रायबरेली को प्रार्थना-पत्र दिया है। सेवक को उपस्थित होने की तारीख ३ मई मिल चुकी है। इसलिए श्रीमान् से सादर-प्रार्थना है कि हमारी पेशी की तारीख ३ मई के बजाय बढ़ा दी जावे। विशेष आज्ञा।"

'डिप्टी कमिश्नर के इजलास में पेशी ?"

इजलास, इजलास है! चाहे वह डिप्टी कमिश्नर का हो या द्विवेदी जी का! फिर वह तिथि क्यों बढ़ायें?

द्विवेदीजी ने २७-४-३८ की पंचायत की बैठक में उक्त प्रार्थना-पत्र को प्रस्तुत किया। वाद-विवाद के पश्चात् निर्णय हुआ कि इस इजलास को तारीख पहले ही निश्चित की जा चुकी है। जब वह जानता था तो उसने डिप्टी कमिश्नर के यहाँ यही तिथि क्यों स्वीकार की? पंचों ने सम्मति प्रकट की। द्विवेदी जी ने प्रार्थना-पत्र अस्वीकार करते हुए लिख दिया :

"पंचों ने इसको स्वीकार करने से इन्कार कर दिया है।"

—म० प्र० द्विवेदी।

द्विवेदीजी के इजलास में कोई 'नकल'-विभाग न था। उन्हें ही फैसलों की नकल लिखनी पड़ती थी। इस प्रतिलिपि की फीस ४ आने थी। यह धनराशि नकल के साथ वसूल करके पंचायत कोष में जमा कर दी जाती थी। द्विवेदी जी जब नकल देते थे तो मूल प्रति पर प्राप्तकर्ता के हस्ताक्षर के साथ, समय और दिनांक भी अंकित कर देते थे। कितने बज कर कितने मिनट पर किस व्यक्ति को कौन सी नकल दी गई, यह उनकी फाइल पर नीली पेंसिल से अंकित रहता था।

द्विवेदी जी का इजलास जहाँ अपनी कर्मठता और सच्चे न्याय के लिए प्रसिद्ध था वहीं वह आदेश देने एवं उसके कार्यान्वयन में भी शिथिल न था। क्या मजाल कि कोई पंचायत के आदेश की अवहेलना कर दे! अवहेलना का अर्थ था—पंचायत के निर्णय का अपमान! यह अपमान द्विवेदीजी सहन करने वाले न थे। वह गलत और अवैधानिक कार्य करनेवाले किसी भी व्यक्ति के साथ रियायत करने को तैयार न थे। भले ही वह अपने को 'तुर्रम खाँ' समझता हो।

एक बार 'खेमान खेरा' ग्राम के कुछ पंडितों ने गाँव के निकट घूरा जमा किया। गाँववालों को इससे कष्ट हुआ। उन्होंने पंचायत में दरख्वास्त दी। पंचायत की बैठक में उस पर विचार हुआ। निर्णय हुआ कि इस गंदगी से गाँव वालों की रक्षा करने के लिए अभियुक्तों को तत्काल ही नोटिस दी जाय। द्विवेदी जी ने लिखा :—

नोटिस

बनाम : १—रामअधीन अवस्थी ।
२—सत्यनारायण अवस्थी ।
३—कृष्णदत्त शुक्ल
४—देवतादीन त्रिवेदी

साकिन : खेमान खेरा ।

"पंचायत के सामने रिपोर्ट गुजरी है कि आप लोग अपने मौजे के बहुत ही करीब एक बाग में घूरा जमा करते हैं। इससे गंदगी फैलती है। सेहत को नुकसान पहुँचता है। लेहाजा आप अपना-अपना घूरा अन्दर एक हफ्ते के वहाँ से उठा लें और मौजे से दूर डालें। वर्ना आप पर मुकदमा चला दिया जायगा। इस नोटिस पर दस्तखत करके लौटा दीजिए।

(ह०) म० प्र० द्विवेदी
सरपंच
पंचायत, दौलतपुर

नोटिस तामील होते ही घूरा हट गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य द्विवेदीजी ने कितनी कर्मठता, सतर्कता एवं लगन के साथ अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। उनकी इस प्रकार की आज्ञा से अनेक व्यक्ति विरोधी भी बन गये। किन्तु कर्तव्य-पालन में उन्होंने कभी भी

किसी की परवाह नहीं की। द्विवेदी जी उस युग की भाषा में 'विलेज मुंसिफ' थे। उन्हें माल तथा फौजदारी के साधारण मुकदमे करने का अधिकार था। उन मुकदमों की एक सीमा भी थी। उसी सीमा के अंतर्गत वह कार्य करते थे। पं० लक्ष्मी-धर वाजपेयी ने एक स्थान पर लिखा था—"द्विवेदी जी 'विलेज मुंसिफ' का भी कार्य कई वर्ष से कर रहे थे। वे आस-पास के तमाम मामलों का निपटारा किया करते थे। वे मुकदमेबाजी अधिक नहीं चलने देते थे।"

भारतीय दंड-विधान की जिन धाराओं के अंतर्गत पंचायत दौलतपुर को माल तथा फौजदारी के मुकदमों का निर्णय करने का अधिकार था, आचार्य जी उन धाराओं के ज्ञाता ही नहीं, पूरे पंडित थे।

एक बार की बात है। भारतीय दंड-विधान की धारा ३२३ के अंतर्गत श्री छंगा पुत्र शीतल मोची सा० चिन्ताखेरा ने श्री मातादीन अवस्थी पर एक मुकदमा दायर किया। वादी का कथन था कि प्रतिवादी ने उसे मारा-पीटा तथा चोट पहुँचाई है। पंचायत की ओर से सम्मन भेजे गये। श्री मातादीन ने सम्मन लेने से इंकार कर दिया। द्विवेदी जी ने उन सम्मनों को जिलाधीश के पास भेजकर प्रार्थना की कि इन्हें 'बाई फोर्स, तामील कराया जाय। यह सूचना पाते ही श्री मातादीन सम्मन तामील होने के पूर्व ही न्यायालय में उपस्थित हो गये। मुकदमा चलने लगा। सबूत पक्ष की ओर से अनेक प्रमाण

प्रस्तुत किये गये। मुकदमे के दौरान द्विवेदी जी को पता लगा कि यह झूठा एवं बनावटी मामला है। एक आदमी को फँसाने एवं जेर-बार करने की कोशिश में यह षड्यंत्र रचा गया है। उन्होंने गवाहों से जिरह की। जिरह में सभी गवाह कट गये। आरोप सिद्ध न हो सका। द्विवेदी जी ने अंतिम निर्णय देते हुए लिखा—"आरोप सिद्ध नहीं होता, अतः मुकदमा खारिज किया जाता है।"

यह था द्विवेदी जी का इजलास, जिसकी चर्चा आज भी गाँववाले बड़े प्रेम से किया करते हैं।

• • •

एक वेद बढ़ गया

❖

आचार्य द्विवेदी जी की कठोरता खटाई में पड़ गई। उनकी अनुशासन-प्रियता बगलें झाँकने लगी। वे किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रह गये।

बात कुछ नहीं !

गाँव का मामला जो ठहरा ! सरपंच होने के नाते उन्होंने अपने ग्राम दौलतपुर के सर्वांगीण विकास की रूपरेखा बना डाली। योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए कठोर कदम उठाया। पर बेकार ! समर्थक कम, विरोधी अधिक ! यदि हिन्दी-साहित्य की बात होती, देवनागरी-लिपि का प्रश्न होता तो उनका कलम-कुल्हाड़ा उठ जाता। काट-छाँट करता। सिखाता—"कहाँ पूर्ण-विराम होना चाहिए, कहाँ अर्ध-विराम, कहाँ कामा !" बेचारा नया लेखक काँप कर रह जाता। यह भी न करते तो आचार्य किशोरीदास जी वाजपेयी के आशीर्वाद माँगने पर आत्म-समर्पण करते हुए यही लिख देते—"आप मिलें, तो मैं आपके पैरों पर अपना सिर रख दूँ। मैं सेवक सचराचर रूप-स्वामि भगवंत।"

पर यह गाँव था। यहाँ सचराचर की सेवा-भावना में पैरों पर सिर रखने से काम नहीं चलता। कठोरता दिखाने

से भी उल्लू सीधा नहीं होता। यहाँ परम्पराएँ तोड़नेवाला चार्वाक का वंशज कहाता है और आत्मसमर्पण करनेवाले के शीश पर लट्टू होता है। नयी रोशनी देखते ही माहिल के वंशज कानाफूसी प्रारम्भ कर देते हैं। बस, उँगलियाँ उठ गयीं। परपंच शुरू हो गया। इस परपंच में सरपंच बेचारा पिस कर रह गया। पर आचार्य द्विवेदी जी पक्के सरपंच थे! उन्हें परपंच में पीसना साधारण काम न था। लोगों को याद होगा कि देवनागरी लिपि में समरूपता लाने के लिए जो कठोर व्रत उन्होंने धारण किया था, वही नियमों का पालन कराने में सफल हुआ। इसी के वशीभूत होकर उन्होंने अपना उपनाम रख लिया—"नियम नारायण शर्मा!" उनका यह नाम उस दिन सार्थक न हो सका जब उनका पाला गाँववालों से नहीं, गाँव के एक मामूली चौकीदार से पड़ा।

परतन्त्र देश! ब्रिटिश राज्य का शीश पर चमचमाता सूर्य! साम्राज्यवाद का नग्न-नृत्य! सरकारी छड़ी छूने वाला एक साधारण-सा चौकीदार भी अपने को गाँव का गवर्नर ही समझता था। उन्हीं दिनों आचार्य जी अपनी सरपंची की शान में गाँव को नया रूप देने में लगे थे। नियमित रूप से पंचायत की बैठकें होतीं। आवेदन-पत्र आते। मुकदमे सुने जाते। विचार-विमर्श होता एवं अभियुक्तों को दण्ड दिया जाता। जिस पर जुर्माना होता, उससे धनराशि की वसूली कठोरता से होती। सरकार ने पंचायत की सहायता के लिए एक चौकीदार

भेज दिया था । दौलतपुर में जो चौकीदार था वह सरेनी थाने से सम्बद्ध था । उसका नाम था—"पुत्ती डोम ।"

और इसी 'पुत्ती डोम' की टक्कर आचार्य द्विवेदी जी से हो गई !

यह बहुत ही लापरवाह व्यक्ति था । न अनुशासन का ध्यान, न समय की पाबन्दी । द्विवेदी जी नियम के बड़े पक्के थे । जो समय जिस कार्य के लिए निर्धारित कर देते थे, क्या मजाल कि एक मिनट इधर-उधर हो जाय । चौकीदार ठीक इसके विपरीत था । यदि द्विवेदी जी उसे दो बजे बुलाते तो वह चार बजे आता । शाम को बुलाने पर सवेरे आता । कहने का तात्पर्य यह कि श्री नियम नारायण शर्मा—आचार्य द्विवेदी जी एवं श्री नियम भंजन वर्मा—पुत्ती डोम, दोनों पंचायत में तीन एवं छ की संख्या बने हुए थे ।

अक्तूबर १९२८ की बात है । द्विवेदी जी के पास हरीपुर ग्राम की एक महिला ने पत्र भेजा । वह विधवा थी । उसका कोई मुकदमा दौलतपुर पंचायत में चला था । आचार्य जी ने उस मुकदमे का फैसला किया । विधवा की डिग्री हो गयी । उसे पाँच आने पैसे, खर्चे के रूप में अपने प्रतिद्वन्द्वी से मिलने थे । यह धनराशि पंचायत में जमा हो गई थी । काफी समय तक जब ये पैसे उक्त विधवा के पास न पहुंचे तो उसने आचार्य द्विवेदी जी को पत्र लिखा—

"बाबू जी साहेब को,

चरन छूना पहुँचै !

मैं बहुत गरीब हूँ। मेरी अरज आप से है। जो पाँच आने पैसे मिलना है सो आप बराय मेहरबानी के साथ चौकीदार से भेजवा देवें। ताकि मेरी आने की रास्ता न देखी जावे। मैं अकेली की वजह से आना नहीं होता है। क्योंकि दो भैंसे हैं। उसी में फँसो रहती हूँ। आगे आप मालिक हैं।

भेजा—

जौजे अम्बर सिह

सा० हरीपुर।

गरीब विधवा ने चौकीदार द्वारा पैसे भेजने की प्रार्थना की थी। चौकीदार साहब अपने ही नशे में चूर थे। आचार्य जी ने चौकीदार को बुला भेजा। वह न आया। कई बार पहले भी वह ऐसा कर चुका था। द्विवेदी जी परेशानी में पड़ गये। विधवा के निवेदन से उनका हृदय द्रवीभूत हो उठा। पर, करते क्या ? विवशता थी। पैसे भेजें तो किस तरह ! वह झल्ला उठे। उन्होंने थाना इञ्चार्ज सरेनी को एक कठोर पत्र लिखा। पत्र यह था—

सब-इंस्पेक्टर पुलिस,

सरेनी।

पंचायत-एक्ट की रू से, पंचायत का काम हलके

के चौकीदार को करना चाहिए। इस पंचायत के काम के लिए आपने हरीपुर के चौकीदार 'पुत्ती डोम' को मुकर्रर किया है। क्योंकि वही सबसे करीब है। मगर वह अपने काम में बड़ी गफलत करता है। इस बात की रिपोर्ट मैं एक दफे आपसे कर चुका हूँ। जवाब में आपने फरमाया था कि चौकीदार से आपने हिदायत कर दी है। मगर उसका कुछ फल नहीं हुआ।

१८ अक्तूबर को मैंने उसके पास तहरीरी हुक्म भेजा कि १९ को सुबह दो मुलजिमों पर समन की तामील करे। मगर वह हाजिर न हुआ। तब २० को सुबह मैंने अपना आदमी भेज कर उसे बुलाया। मगर वह अपना खेत जोतता रहा। १२ बजे तक जब वह न आया तब सम्मनों की तामील, अपना हर्ज करके मैंने अपने आदमी से कराया। चौकीदार २ बजे आया। तब तक काम हो गया था। आने पर मैंने उससे कहा, २२ को २ बजे पंचायत में हाजिर हो। गवाहों पर तामील करने के लिए ३ सम्मन ले जाओ। मगर कल भी वह नहीं आया। आज भी अभी १२ बजे तक उसकी सूरत नहीं दिखाई पड़ी। सम्मन पड़े हुए हैं।

बिना आप की मदद के पंचायत का काम नहीं चल सकता। आप इस चौकीदार से मुनासिब बाजपुर्स कीजिए। अगर वह काम न कर सकता हो तो और चौकीदारों को

हुक्म दीजिए कि वे हर सोमवार को और शुक्रवार को २ बजे, पंचायत के काम के लिए, बिला नागा हाजिर हुआ करें। यह भी न हो सके तो इजाजत दीजिए मैं हाकिमों को लिखूं कि कोई दूसरा ही इंतजाम कर दें।

म० प्र० द्विवेदी

२३-१०-२८

यह कठोर पत्र जब दरोगा जी को मिला तो वह चौंक पड़े। उन्होंने चौकीदार को बुलाया। उसे डाँटा-फटकारा। तब कहीं वह पंचायत का नियमित कार्य करने लगा। उससे सम्मन तामील कराये गये तथा उस विधवा के पास पाँच आने पैसे भेजे गये।

यह रही परेशानी नम्बर-एक !

आचार्य जी को दूसरी परेशानी हुई 'पंचायत-क्लर्क' से !

सरकार की ओर से जिले के केन्द्र स्थल पर एक पंचायत क्लर्क रहता था। वह सम्पूर्ण जिले की पंचायतों का कार्य करता था। आवश्यक रूप-पत्र, रसीद-बुकें, तथा राजकीय आदेश वह संबंधित पंचायतों को भेजा करता था। सबसे मजेदार बात तो यह कि पंचायत क्लर्क बेचारा हिन्दी न जानता था। और उसका पाला पड़ गया था हिन्दी के 'भीष्म-पितामह' से। उस युग की परम्परा के अनुसार पंचायत क्लर्क जो भी आदेश भेजता वह या तो अंग्रेजी में होते या उर्दू में ! यों द्विवेदी जी को अंग्रेजी तथा उर्दू दोनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। ज्ञान

होना और बात है, प्रेम होना और ! हिन्दी का आचार्य होने के नाते उन्हें अंग्रेजी तथा उर्दू की चिट्ठियाँ अखर जाती थीं। हिन्दी की यह उपेक्षा उनकी सहनशक्ति की सीमा पार कर चुकी थी। पर वह चुप थे। केवल मन मसोस कर रह जाते थे। इधर पंचायत क्लर्क बार-बार उनके पास अंग्रेजी में ही पत्र भेजता। इन अंग्रेजी और उर्दू के पत्रों से द्विवेदी जी ऊब गये। वह मौका ढूँढ़ने लगे।

इधर एक गलती पंचायत क्लर्क ने भी कर डाली। उसने द्विवेदी जी को एक पत्र लिखा। उस पर उसने जो पता लिखा उसमें—"श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी" के बजाय लिख दिया—"श्री महावीर प्रसाद त्रिवेदी।"

फिर क्या था ? द्विवेदी जी को अपना गुबार निकालने का एक अवसर मिल गया। इसकी तलाश में वह थे ही। मातृ-भाषा की उपेक्षा पर उनकी आत्मा तड़प उठी। अंतस् में दबा हुआ ज्वालामुखी फूट पड़ा। उन्होंने पंचायत-क्लर्क को फट-क़ारते हुए लिखा—

"जनाब पंचायत क्लर्क साहब।"

आप अपनी अंग्रेजी की चिट्ठी लीजिए। अंग्रेजी में मैं Well-versed नहीं। आप लोगों के सुभीते के लिए किसी तरह उस जबान में, कामचलाऊ कुछ पढ़-लिख लेता हूँ। क्या करूँ ? कचहरी की उर्दू से मेरी बहुत कम जान-पहचान है। उसे तो देखते ही मेरा दिल धड़कने लगता है। हाँ,

हिन्दी कुछ लिख लेता हूँ। मगर उसकी पैठ आपकी कचेहरी में कहाँ ? वह तो वहाँ अछूत हो रही है। देखूं, मेरी इस लिखावट को आप दाद देते हैं या नहीं।

आपने लिफाफे के ऊपर मुझे द्विवेदी से त्रिवेदी बना डाला। मेरा एक वेद बढ़ा दिया। इसका शुक्रिया अदा करता हूँ। किसी तरह आपका नाम मालूम हो जाता तो नवाजिश होती।

सरकार, रसीद-बुक (Form No. 5) की दो कापियां तो भेजवा दीजिए। दो दफे लिख चुका। अब और क्या करूँ, तार भेजूँ ?

३०-५-३१

महावीर प्रसाद द्विवेदी।

कितनी झुँझलाहट एवं पीड़ा है आचार्य जी के इस पत्र में। एक राजकीय कर्मचारी को, हिन्दी का पक्ष लेकर लिखा गया यह उनका अकेला पत्र है।

पञ्चायत-क्लर्क इस पत्र को पढ़ते ही परेशान हो उठा। उसे अब तक इस बात का ज्ञान हो चुका था कि दौलतपुर का सरपञ्च, केवल सरपञ्च ही नहीं हिन्दी का भाग्य-विधाता भी है। उसने क्षमायाचना के साथ द्विवेदी जी को अपनी विवशता बताते हुए पुनः अंग्रेजी में पत्र लिखा—

"प्रिय महोदय,

मुझे अपनी गलती के लिए अत्यधिक खेद है।

आपने जिस बात के लिए इंगित किया है मैं उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। आपके पते पर फार्म नं० ५ भेजे जा रहे हैं। मैं बहुत ही कम हिन्दी जानता हूँ। इसी से इस भाषा में आपको पत्रोत्तर देने की धृष्टता कर रहा हूँ।"

आपका शुभचिंतक

जे० एन० लाल

(पञ्चायत क्लर्क)

पञ्चायत-क्लर्क को द्विवेदी जी ने क्षमा कर दिया। क्षमा ही नहीं, उसकी सुविधा के लिए उन्होंने अपने हिन्दी फैसलों का अंग्रेजी अनुवाद तक कर डाला। बाद में जितने फैसले उन्होंने सदर-कार्यालय में भेजे वे सभी अंग्रेजी में थे। उनके ऐसा करने का एक कारण यह भी था कि प्रायः उन फैसलों की अपील होती थी। अपील पर निर्णय अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर देता था। अतः उन्हें भय था कि हिन्दी में होने के कारण कहीं अर्थ का अनर्थ न हो जाय। क्योंकि जब क्लर्कों की यह दशा है तब अंग्रेज अधिकारी क्या समझेगा।

• • •

परम्परा से टक्कर

"कल्पना कीजिये कि आप एक 'षोडशी-बाला' हैं। आप के नयन कानों तक बढ़ आये हैं। आप के पीन-पयोधरों को देखकर कुंजर-कुम्भ लज्जित हो रहे हैं। ज्यों-ज्यों आप की कटि क्षीण होती जाती है त्यों-त्यों चिन्ता बढ़ती जाती है। मदन-दाह से आप को रात भर नींद नहीं आ पाती। आप की यह दशा देख. माँ व्याकुल हो रही है। वह शीश पर हाथ रख, फूट-फूट कर रोती है। घर में "भूँजी-भाँग" नहीं। बिना दहेज के विवाह हो नहीं सकता। बेचारा बाप परेशान है। तब बताइये, आप पर क्या बीतेगी ?"

आचार्य द्विवेदी जी का यह एक व्यंग्य है। उन पर, जो समाज के ठेकेदार हैं, दहेज प्रथा के परिपोषक हैं, उन्नायक हैं। द्विवेदी जी 'ठहरौनी' के कट्टर विरोधी थे। समाज-सुधारक तो वह थे ही, परम्परा पर चोट करना उनका काम था। यही कारण है कि रूढ़िवादिता के प्रति जो भाव उनके मन में थे, वे लेखनी पर उतरे, जो लेखनी पर उतरे वे जीवन में चरितार्थ हुए। दहेज माँगने वालों के सम्मुख अब उनका यह नया तर्क था। द्विवेदी जी ने उन्हें षोडशी-बाला बना डाला। स्पष्ट कह दिया—"इस प्रकार समझ में नहीं आयेगा। आप अपने

डा० किल्ली रमण रेड्डी
कल्याणी रेड्डी स्मारक
पुस्तकालय 9273

को एक नव-यौवना की स्थिति में रखिये तब वास्तविकता का पता लगेगा ! प्रथम पुरुष में कल्पना कीजिये कि यदि दहेज की वजह से आप के माता-पिता विवाह न कर सकें तो आप क्या करेंगे ? आप पर क्या बीतेगी ?''

आचार्य जी ने अपनी अनुपम सूझ-बूझ से तर्क तो रख दिया। पर, यह नहीं सोचा कि यहाँ ग्रामीण-समाज है। एक से एक बढ़ कर चालबाज हैं। दहेज ही नहीं, वह दहेज से भी दो कदम आगे उछल जाते हैं। गाँव के भाग्य-विधाता जो ठहरे ! सोचिए, यदि किसी षोडशी-बाला का पिता 'जर-मर' कर दहेज भी दे दे। विवाह भी पक्का कर आवे। मंगल-परिणय की तिथि भी निश्चित हो जाय। वर-वधू जीवन के रंगीन सपने भी देखने लगें, ठीक उसी समय कोई अड़ंगेबाजी करके विवाह ही भंग कर दे, तब उस षोडशी-बाला, उसके पिता एवं परिवार पर क्या बीतेगी ?

यह द्विवेदी जी की कल्पना से परे बात थी ? उन्होंने समाज के इस पक्ष पर कभी विचार भी न किया था। पर, उनकी आँखें खुल गईं जब दिनांक १७-६-२६ को उन्हें एक प्रार्थना-पत्र मिला। प्रार्थना-पत्र अपने ढंग का निराला था। उसे ग्राम चिन्ताखेरा के पं० हरदयाल त्रिपाठी ने भेजा था। उन्हें विश्वास था—''पंचायत इस पर निर्णय करेगी, वर्तमान कठिनाई से मुक्ति देगी, पर जो कुछ हुआ, वह एक चिंतनीय विषय बन गया। प्रार्थना-पत्र यों था—

जनाब सरपञ्च साहब,

पञ्चायत दौलतपुर।

मेरा दावा नीचे लिखे हुए आदमियों पर कृपा कर दायर कर लीजियेगा। दावा यह है—

१. श्री... ... ...साकिन चिन्ताखेरा

२. श्री... ... ...सा० चिन्ताखेरा

३. श्री... ... ...सा० दौलतपुर

ने मेरी लड़की की शादी झूठी बातें कह कर मार दिया कि इनका चलनसार चार भले आदमियों में नहीं है। जिससे मेरी बड़ी बेइज्जती और नुकसान हुआ। मेरी आत्मा को बहुत दुख पहुँचा। लिहाजा उम्मीद करता हूँ कि पञ्चायत इस पर विचार करे। जो मुनासिब समझे वह नुकसान दिलावे। सूर्य सहाय, रौतापुर में, ब्रह्मभोज के बीच में, बहुत आदमियों के सामने, बहुत तरह की खराब बातें कहीं। श्री... ... ... ने उससे जाकर कहा कि कोई खाता-पीता नहीं। काम करने के लायक नहीं।*

(द०) हरदयाल प्रसाद त्रिपाठी ब० खु०

साकिन—चिन्ताखेरा

१७. ६. २९

---

* उपर्युक्त प्रार्थना-पत्र में सभी व्यक्तियों के नाम हैं। मैं उन्हें यहाँ देना उचित नहीं समझता।

आवेदन-पत्र द्विवेदी जी के लिए एक समस्या बन गया। पञ्चायत के लिए यह सर्वथा नवीन विषय था। मामला भी अपने ढंग का निराला था। समझ में नहीं आता था कि इस पर क्या किया जाय। प्रार्थना-पत्र पाते ही द्विवेदी जी ने 'इत्तिलानामा' निकाला। पञ्चायत की बैठक बुलाई। बैठक में सर्व-सम्मत निश्चय हुआ कि यह प्रश्न पञ्चायत की सीमा के बाहर है। द्विवेदी जी ने प्रार्थना-पत्र पर लिख दिया—

'यह पञ्चायत की सीमा के बाहर का प्रश्न है। अतः इसे स्वीकार करने में असमर्थता है।"

मामला समाप्त हो गया। पर, पञ्चायत को लेकर गाँव में जो नुक्ताचीनी हुई उससे एक नया वितंडावाद उठ खड़ा हुआ। द्विवेदी जी सरपञ्च की हैसियत से भले ही उस पर कुछ न कर सकते थे पर व्यक्तिगत रूप से उन्होंने उसका विरोध किया। परिणाम यह निकला कि गाँव के कुछ लोगों को यह बात बुरी लगी। अभियुक्तों का तो कहना ही क्या? उन्हें मौका मिला। उन्होंने द्विवेदी जी को आड़े हाथ लिया। सबसे अधिक इस कांड पर रुष्ट हुये अभियुक्त नं० २—श्री अवध बिहारी जी। वे द्विवेदी जी से प्रतिशोध लेने पर आमादा हो गये। उनके साथी भी अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। गाँव के अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति भी द्विवेदी जी की न्याय-प्रियता एवं कठोरता से रुष्ट हो चुके थे। सभी विरोधियों का एक दल तैयार हो गया। इनमें प्रायः

कट्टर रूढ़िवादी थे। वे एक समाज-सुधारक से लोहा लेने को तैयार हो गये।

यह घटना चर्चा का विषय बनी ही थी कि द्विवेदी जी ने एक नया कदम उठा दिया। कहा जाता है कि उनकी धर्मपत्नी ने एक विनोद कर डाला था। द्वार पर एक चबूतरा था। उसमें हनुमान जी की प्रस्तर-मूर्ति प्रतिष्ठित थी। चबूतरा कच्चा था। बरसात में गिर गया। माता जी ने उसे पक्का करा दिया। चबूतरा तैयार हो जाने पर उन्होंने द्विवेदी जी से व्यंग्यपूर्वक कहा—"देखो, मैंने तुम्हारा (महावीर का) चबूतरा पक्का बनवा दिया।"

द्विवेदी जी धर्मपत्नी की व्यंग्योक्ति पर मुस्कराये। उनका नाम भी 'महावीर प्रसाद' था। हनुमान जी को महावीर कहा ही जाता है। पत्नी की इस सूझ पर द्विवेदीजी विहँस कर बोले—"तुमने मेरा चबूतरा ही पक्का करवा दिया है, मैं तुम्हारा मन्दिर बनवा दूँगा।"

श्रीमती जी चुप हो गईं। बात सत्य हुई। उनके देहान्त के बाद द्विववेदी जी ने उनका एक मन्दिर बनवा दिया। मन्दिर के निर्माण एवं प्रतिमा-प्रतिष्ठा की सूझ-बूझ भी अनोखी है। एक ओर सरस्वती की मूर्ति है। दूसरी ओर लक्ष्मी जी को। इन दोनों के मध्य आचार्य-पत्नी की प्रतिमा है। मन्दिर में संस्कृत का एक श्लोक भी लिखा है जिसका भावार्थ है—"मैंने आजीवन सरस्वती की पूजा की किन्तु लक्ष्मी के नाम पर तुम्हारी ही

आराधना करता रहा।'' तीनों मूर्तियों के साथ पत्नी को लक्ष्य करके लिखा गया यह वाक्य कितने भाव छिपाये है इसका अनुमान कलाविद् ही कर सकते हैं।

माता जी का मन्दिर बन गया। मूर्ति प्रतिष्ठित हो गई। फिर क्या था ? गाँव तथा समाज वालों को एक मौका मिल गया। 'बीस बिस्वा' वाले कान्यकुब्जों के प्रदेश में तहलका मच गया। काना-फूसी होने लगी। लोग व्यंग्य से कहने लगे—

''अरे, चौवे जी, कुछ सुना ?''

''क्या बात है दुबे जी, कोई नया समाचार ?''

''तुम्हें खबर हो नहीं ?'' चौबे जी ने आँखें मटकाईं—लगता है यहाँ रहते ही नहीं। बैसवारे भर में तहलका मचा है। तुम क्या जानो ? बड़े भोले हो न ?''

''अरे बाबा, नाराज क्यों होते हो ! बात तो बताओ ?''

''बात ! हुँः ! क्या बतावें, कुछ कहते ही नहीं बनता ! दुबौना (द्विवेदी जी) मेहरिया कै मन्दिर बनवाइस है। सबसे पूजा कराई।''

''राम ! राम !! छि ! छि !!''—चौबे जी ने नाक-भौं सिकोड़ी—''घोर कलिकाल लगा है महाराज ! जो न हो जाय वही थोड़ा है। सीताराम ! सीताराम !''

चारों ओर यही चर्चा ! यही प्रसंग, यही प्रकरण ! सुनते-सुनते द्विवेदी जी ऊब गये। उन्होंने मन्दिर में ताला डलवा दिया। पर, प्रपञ्च बन्द न हुआ। उसी समय पर पं० लक्ष्मीधर

वाजपेयी जी दौलतपुर आये। द्विवेदी जी की बैठक में माता जी का चित्र लगा था। उसे देख, उन्होंने द्विवेदी जी से पूछा—महाराज, माता जी का फोटो शायद यही मालूम पड़ता है।''

''हाँ'' द्विवेदी जी ने उपेक्षा से उत्तर दिया।

''मैंने सुना है कि आपने इनका कोई मन्दिर बनवाया है?'' वाजपेयी जी ने जिज्ञासा प्रकट की।

''देखते नहीं हो!'' द्विवेदी जी ने उँगली उठाई—''वह सामने।''

''उसमें तो ताला बन्द है!'' वाजपेयी जी ने प्रश्न किया—''मैं दर्शन कैसे करूँ?''

द्विवेदी जी का बाँध टूट गया। भाव बह निकले। आवेश में बोले—''भई, ताला न बन्द रक्खूँ तो क्या करूँ? आप जानते हैं, यहाँ देहात के आदमी, बड़े-बड़े पंडित, पाधा, पुरोहित इसे देखकर जलते हैं। कहते हैं इसने अपनी स्त्री की मूर्ति स्थापित की है। इसकी यही बड़ी देवता है। पुजवाना चाहता है।''

''महाराज!'' वाजपेयी जी ने उत्तर दिया—''ये लोग भ्रम में भूले हैं। बाद को यही एक तीर्थ-स्थान हो जायगा। हमारे समान तो हजारों पुजारी इसे अब भी इसी दृष्टि से देखते हैं। आगे यहाँ के लोग भी समझ जायेंगे। लेकिन मैं तो दर्शन अवश्य करूँगा।''

आचार्य जी खामोश हो गये।

आचार्य-पत्नी का यह मन्दिर काफी समय तक वहाँ चर्चा का विषय रहा। द्विवेदी जी को अनेक विष-भरे व्यंग्य-बाण सहने पड़े। आज वह मन्दिर खुला है, पर, द्विवेदी जी वर्षों तक उसमें ताला लटकाये रहे। चुपचाप आलोचनाएँ सुनते रहे। व्यंग्य-बाण उन्हें पथ से विचलित नहीं कर सके। इतनी आलोचनाओं के बाद भी गाँव की परम्परा को नया मोड़ देना उन्हीं सरीखे महापुरुषों का काम था। उनकी कर्तव्य-परायणता का परिणाम यह हुआ कि उस छोटे-से गाँव में पक्का कुआँ, फुलवाड़ी, पाठशाला, डाकघर, गोशाला, मंदिर आदि सभी कुछ बन गये। दौलतपुर, रायबरेली जिले का एक आदर्श ग्राम हो गया।

१९२९ में बाबा राघवदास जी दौलतपुर पधारे। वह द्विवेदी जी की ग्राम-सेवा से इतना अधिक प्रभावित हुए कि दौलतपुर से जाने के बाद १९३९ में उन्होंने लिखा—

"दौलतपुर जाकर वहाँ की सफाई, पञ्चायत, पाठशाला आदि का प्रबन्ध देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। आचार्य जी केवल आचार्य ही नहीं थे। जिस ग्राम-सुधार-सेवा की चर्चा आज इतने जोरों से हो रही है उसको उन्होंने, वृद्धावस्था में, आज से दस वर्ष पहले ही कर दिखाया था। वे जैसे लेखक थे, वैसे ही कर्मठ ग्राम-सेवक भी।"

पर, इन बातों का विरोधियों पर कोई प्रभाव न पड़ा। वह आचार्य जी का डट कर विरोध करते रहे। आचार्य जी भी कटिबद्ध थे। जितना ही विरोध होता था, उतने ही उत्साह से वह काम करते थे। • • •

गाँव की फूट खाता हूँ

१९३० की बात है। द्विवेदी जी का स्वास्थ्य कुछ खराब था। गाँव में दवा-दारू का उचित प्रबंध कहाँ? वह वायु-सेवन करते, टहलते, खेतों और बागों में घूमते। प्राकृतिक-चिकित्सा ही जीवन का आधार थी। उसी समय पर कानपुर से एक सज्जन उनसे मिलने आये। आचार्य जी कहीं भी रहें, भक्त-गण पहुँच ही जाया करते थे। प्रभात का समय था। द्विवेदी जी टहल कर लौट आये थे। अपने कमरे में बैठे थे। सबेरे-सबेरे ही कोई ग्रामीण उन्हें एक बरसाती ककड़ी जिसे गाँव की बोली में–'फूट' कहा जाता है–दे गया था। वह वहीं रक्खी थी। आगन्तुक सज्जन ने कुशल-क्षेम के पश्चात् आचार्य जी के स्वास्थ्य के विषय में पूछा। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि द्विवेदी जी अस्वस्थ हैं तब उन्होंने कहा—"आचार्य जी, यहाँ देहात में तो आपको बहुत कष्ट होता होगा, फल वगैरह भी न मिल पाते होंगे?"

आचार्य जी उनके इस प्रश्न पर बिहँस उठे। मुस्कुराते हुए बोले—"अरे भाई, यहाँ का फल तो 'फूट' है।" उन्होंने कमरे में रक्खी लंबी ककड़ी की ओर संकेत करके कहा—"मैं तो इसी को खाता हूँ!"

बात सत्य थी। सचमुच आचार्य जी अपने स्वास्थ्य से खिल-वाड़ करके 'गाँव की फूट' खा रहे थे। ग्रामीण वातावरण इतना

दूषित था कि किसी विवेकशील प्रगतिगामी व्यक्ति का दम घुटने लगता था। जीवन दूभर हो जाता था। वह वहाँ तब तक नहीं रह सकता था, जब तक परिस्थितियों में रम न जाय, वहाँ का आदी न हो जाय। गाँवों की परिस्थितियाँ भी अजीब हुआ करती हैं। छोटी-छोटी बातें लेकर झगड़ा-फसाद, मुकदमेबाजी, कलह, उत्पीड़न एवं गाली-गलौज तो दैनिक-जीवन के साधारण-से अंग हैं। मार-पीट हो जाना भी आश्चर्यजनक नहीं। ऐसे वातावरण में सत्प्रेम एवं सद्भावना के अंकुर पनपने ही नहीं पाते। उन्हें आपसी फूट की हवा के गर्म झकोरे सुखा डालते हैं। कोई इन अंकुरों की रक्षा करता है तो वह भी शिकार बनता है। द्विवेदीजी, सरपंच की हैसियत से इन्हीं अंकुरों की रक्षा के लिए 'गाँव की फूट' खा रहे थे। और यह फूट, स्वयं द्विवेदी जी का रक्त चूस रही थी।

आचार्य जी पास-पड़ोस के तमाम मामलों का फैसला करते। अनेक व्यक्ति उनसे गूढ़-से-गूढ़ विषय पर सलाह लेते। जहाँ तक होता, वह आपसी कलह को बढ़ने न देते। समझौता करा देते। वह बहुधा कहा करते—"भोला-भाला किसान मुकदमे-बाजी के चक्कर में पड़कर बर्बाद हो जायगा।" यही कारण था कि वह अपनी पंचायत में आये हुए मुकदमों का ऐसा फैसला करते कि वादी-प्रतिवादी, दोनों का काम बन जाता, और उन्हें आर्थिक-मुक्ति मिल जाती। जहाँ तक हो सकता वे सुलह करा देते। उनकी सरपंची के लगभग अठारह-वर्षों में अनेक बार ऐसे

अवसर आये जब कि उन्होंने कई व्यक्तियों को उबार लिया। इतना सब होने पर भी बहुत-से ग्रामीणों की भृकुटी तनी ही रहती थी। जब कोई अकड़ दिखाता, उनकी बात न मानता अथवा तलब करने पर पंचायत के सामने उपस्थित न होता तो वह ऐसी वैधानिक कार्यवाही करते कि उसकी सारी 'हेकड़ी' भूल जाती। इस प्रकार के व्यक्तियों के साथ उनका बड़ा ही कठोर कदम उठता।

अक्तूबर, १९३० में एक घटना घटी। घटना साधारण थी, किन्तु गाँव की दलबंदी ने उसकी साधारणता को असाधारण बना दिया। दौलतपुर के पड़ोस में एक ग्राम है—दलीपुर। वहाँ के श्री गंगाप्रसाद पुत्र बैलाने अहीर ने श्री शिवनायक वाजपेयी, ग्राम मदनापुर का खेत चरा डाला। जब वाजपेयी जी को इसकी सूचना मिली, वह खेत की ओर लपके। वहाँ सब कुछ साफ था। वाजपेयी जी ने गंगाप्रसाद के पशुओं को कांजी-हाउस ले जाना चाहा। गंगाप्रसाद ने उन्हें ऐसा करने से रोका। वाजपेयी जी न माने। गंगाप्रसाद झगड़ा पर आमादा हो गया। उसने बलात् पशुओं को छुड़ा लिया। वाजपेयी जी कमजोर पड़ते थे। वह पशुओं को कांजी हाउस न ले जा सके। डरकर घर लौट आये। गंगाप्रसाद जानवर छीन कर अपने गाँव चला गया। इस पर दोनों गाँव के व्यक्तियों में मन-मुटाव पैदा हो गया। अब झगड़ा गंगाप्रसाद अहीर और शिवनायक

वाजपेयी का न होकर ग्राम दलीपुर और मदनापुर का हो गया। वाजपेयी जी ने गाँववालों की सलाह से पंचायत दौलतपुर में एक प्रार्थना-पत्र दिया तथा निवेदन किया कि मुझे मेरा नुकसान दिलाया जाय। गंगाप्रसाद को उसके इस अवैधानिक कार्य पर सजा दी जाय।

आचार्य द्विवेदी जी ने प्रार्थना-पत्र स्वीकार कर लिया। पंचायत की बैठक में गंगाप्रसाद को उपस्थित होने की सूचना भेजी। उसे लिख दिया कि वह २७ अक्तूबर, १९३० को २ बजे दिन में उपस्थित हो। सूचना-पत्र (सम्मन) लेकर जब चौकीदार गंगाप्रसाद के पास गया तो उसने, उसे लेने से इन्कार कर दिया। अकड़बाजी दिखाई। गंगाप्रसाद का पक्ष लेकर गाँव के पढ़े-लिखे व्यक्तियों ने वैधानिक प्रश्न उठा दिया कि "ग्राम दलीपुर, पंचायत-क्षेत्र दौलतपुर की कार्य-सीमा के बाहर है। सम्मन की तामीली अवैधानिक है।" सम्मन अदम तामील होकर लौट आया। चौकीदार ने आकर सम्पूर्ण वृत्तांत द्विवेदी जी को सुनाया। उन्हें यह समाचार, पंचायत की मर्यादा पर आघात करने वाला लगा। वे भुंझला उठे। उन्होंने डिप्टी कमिश्नर रायबरेली को तत्काल ही पत्र लिखा, वापस आये सम्मनों को उसी में संलग्न कर दिया। द्विवेदी जी का पत्र अंग्रेजी में था। उसका अनुवाद यों है—

पंचायत-दौलतपुर
२७ सितम्बर, १९३०

सेवा में,

जिलाधीश, रायबरेली।

महोदय,

श्री शिवनायक पुत्र शिवराम वाजपेयी, सा० मदनापुर—वादी, श्री गंगाप्रसाद पुत्र बैलाने अहीर, सा० दलीपुर—प्रतिवादी, अभियोग सं० ४८,१९३० मवेशी बजोर छुड़ा लेना अधिनियम २४ के अंतर्गत।

ग्राम-पंचायत अधिनियम, धारा ३९ के अंतर्गत मैं एक सम्मन की दो-प्रतियाँ आपके पास इसलिए भेज रहा हूँ कि इन्हें प्रतिवादी पर तामील किया जाय। प्रतिवादी श्री गंगाप्रसाद पुत्र बैलाने अहीर सा० दलीपुर, थाना सरेनी का निवासी है।

मैं श्रीमान का बहुत शुक्रगुजार होऊँगा यदि इसे आप प्रतिवादी पर तामील कराकर उसके हस्ताक्षर करा लें। हस्ताक्षर की हुई प्रति आगामी २७ अक्तूबर को, या उससे पूर्व, मेरे पास भेज दें। क्योंकि मुकद्दमा सुनने की यही तिथि निश्चित हुई है।

कथित अपराध, मदनापुर (चिन्ताखेरा) ग्राम में, जो कि पंचायत क्षेत्र दौलतपुर के अंतर्गत है, घटित हुआ है। किन्तु अभियुक्त ग्राम दलीपुर में रहता है। जो कि यहाँ

से दो मील दूर है। यह ग्राम, पंचायत की अधिकार-सीमा के बाहर हैं। इसी से यह अनुरोध श्रीमान् जी से किया गया है।

भवदीय

म० प्र० द्विवेदी

पत्र जिलाधीश, रायबरेली के पास चला गया। श्री गंगा-प्रसाद पुत्र बैलाने अहीर को जब इसकी सूचना मिली कि द्विवेदी जी ने सम्मन की तामीली के लिए जिलाधीश को लिखा है तो वह भय से कांप उठा। निश्चित तिथि पर स्वयं पंचायत में उपस्थित हो गया। द्विवेदी जी दोनों ग्रामों की दलबंदी से परिचित थे। उन्होंने आपस में समझौता करा दिया। समझौता हो जाने के बाद एक बहुत बड़ा संकट टल गया। उन्होंने जिलाधीश रायबरेली को पुनः पत्र भेजा और उन्हें सूचित किया कि प्रतिवादी अदालत पंचायत में उप-स्थित हो गया है। उसने वादी शिवनायक के साथ सुलह कर ली है। अतः उसके विरुद्ध लगाया गया अभियोग रद्द किया जाता है। ऐसी स्थिति में, मेरे इसी मास भेजे गये पत्र तथा सम्मनों को समाप्त समझा जाय। इधर जिलाधीश ने द्विवेदी जी का दूसरा पत्र पाने के पूर्व ही अपने विशेषाधिकार से सम्मनों को तामीली पर भेज दिया था। बाद में वह सम्मन प्रतिवादी पर तामील भी हुआ; किन्तु सब कुछ समाप्त हो चुका

था। समझौते से दोनों का मनमुटाव मिट गया था और आपस में सद्भावना पैदा हो गई थी।

इस प्रकार, द्विवेदी जी के सक्रिय योगदान से कृषक-वर्ग को राहत तो मिली ही, पशुओं का खेतों में अनधिकार प्रवेश भी बंद हो गया। किसान, जहाँ छोटी-छोटी बातों में आपस में लड़ा करते थे, मुकदमेबाजी किया करते थे, इस घटना से थर्रा उठे। पास-पड़ोस के गाँवों पर भी इस घटना का व्यापक प्रभाव पड़ा। तहलका मच गया। सभी यह चाहने लगे कि उन्हें सस्ता एवं समुचित न्याय मिले। द्विवेदी जी पर लोगों का विश्वास बढ़ा। उनकी न्याय-प्रियता पर लोगों की इतनी आस्था हो गई कि ग्राम हैवतपुर के निवासियों ने जिलाधीश रायबरेली, को एक प्रार्थना-पत्र भेजकर माँग की कि हमारा ग्राम भी दौलत-पुर ग्राम-पंचायत में सम्मिलित कर दिया जाय। उनका यह प्रार्थना-पत्र जिलाधीश ने विचार के बाद अस्वीकृत कर दिया। इसका कारण यह था कि उक्त ग्राम में दलबंदी का बहुत ही उग्र-रूप था। पार्टीबन्दी के आधार पर सरकार को संदेह हो गया था कि—"ये लोग नाजायज तौर पर फरियाद करने का अवसर ढूँढ़ रहे हैं।"

प्रार्थनापत्र सरकार द्वारा अस्वीकृत हो चुका था। अतः द्विवेदी जी मौन ही रहे। फिर भी, वहाँ की जनता उनके पास परामर्श लेने आती रही। यदि ऐसा न हो गया होता तो इसमें किंचित् सन्देह नहीं कि अपने पंचायत-क्षेत्र की जनता की फूट

खाने वाला महारथी, वहाँ की भी फूट खाने में समर्थ हो जाता। यही नहीं, वह दलबंदी के दलदल में फँसे हुए भोले-भाले ग्रामीणों की अंतरात्मा में सत्प्रेम, सद्भावना एवं सहयोग के बीज बोकर उन्हें हरा-भरा करता। पर, जिलाधीश की आज्ञा के पश्चात् द्विवेदी जी वैधानिक रूप से नहीं, अपने सामाजिक अधिकारों से वहाँ की भी फूट खाने में समर्थ हुए।

●●●

कर्मठ सरपंच : लापरवाह पंच

✣

लोगों का कथन है कि जहाँ आचार्य द्विवेदी जी के साहित्यिक-अनुयायी उनके गरिमामय व्यक्तित्व के समक्ष हतप्रभ हो जाते थे, वाद-विवाद क्या, ठीक से बातें करने में भी घबराते थे, वहीं छोटी जाति के अपढ़, गँवार, दरिद्र ग्रामीण उनसे निर्भीक बातें करते थे। वे अपने दुःख-सुख की गाथा सुनाते, परामर्श लेते, मनोविनोद करते, और आवश्यकतानुसार सहायता की याचना करते। द्विवेदी जी गाँव वालों से प्रायः ग्रामीण बोली में ही बातें करते थे। किन्तु पंचायत के सदस्यों के प्रति उनकी यह विनम्रता सदैव कठोरता का ही आंचल थामे रहती। इसका कारण था—पंचों की लापरवाही ! इस लापरवाही से द्विवेदी जी परिचित हो चुके थे। अतः जब वह उन्हें सूचना-पत्र भेजते तो स्पष्ट लिख देते—"हाजिर अवश्य हूजिए। हिदायत समझिए !" यह हिदायत उचित ही थी। पंच-गण अपने-अपने गाँव का प्रतिनिधित्व करते थे। द्विवेदी जी का कथन था "कि यदि गाँव का प्रतिनिधि नियमित रूप से पंचायत की कार्यवाही में भाग नहीं लेगा, अपने गांव की घटनाओं के प्रति जानकारी नहीं रखेगा तो वह पंचायतों का प्रतिनिधित्व क्या करेगा ?"

४

आचार्य द्विवेदी जी की यह विशेषता थी कि वह संपादन, लेखन एवं पठन-पाठन का कार्य करते हुए भी नियमित रूप से पञ्चायत की बैठकों में भाग लेते थे। जिस प्रकार प्रतिदिन कम-से-कम एक घण्टे लिखना उनकी दिनचर्या में शामिल था, उसी प्रकार जहाँ तक हो सकता वह यही प्रयत्न करते कि पञ्चायत की बैठक उनसे छूटने न पाये। किसी कारणवश उन्हें बाहर जाना होता तो वह सूचना-पत्र में ही इसका उल्लेख कर देते। पर, यह कोशिश अवश्य करते कि उनके जाने के पूर्व ही बैठक हो जाय।

सितम्बर १९२७ की बात है। एक आवश्यक कार्य से उन्हें कानपुर जाना था। पञ्चायत की बैठक वे छोड़ना नहीं चाहते थे; अतः उन्होंने पञ्चों को इत्तिलानामा भेजते हुए लिखा :—

इत्तिलानामा

जौहरी नाई ने मार-पीट का एक मुकद्दमा दायर किया है। समन निकालने की राय आप की हो, तो इसकी पुश्त पर लिख दीजिए कि समन निकालिये। और अगले सोमवार, तारीख २६ को सुबह ८ बजे जरा देर के लिए पंचायत में चले आइये और मुकद्दमे का फैसला हो सके तो कर दीजिये। उसी दिन मैं दोपहर में कानपुर जाने की तैयारी करूँगा। और मंगल को चला आऊँगा।

म० प्र० द्विवेदी

गाँववालों का कथन है कि द्विवेदी जी समय के इतने पाबन्द थे कि उनके प्रत्येक कार्य का समय निश्चित था। जब वह शौच को जाते, दातून करते, स्नान करते तब लोग समझ जाते कि अब इतना बजा है। समय की इतनी पाबन्दी करने वाला व्यक्ति पञ्चायत के सदस्यों को कब क्षमा करता। उनके 'हिदायत' देने पर भी जब कोई सदस्य समय से बैठक में न आता तब वह रुष्ट हो जाते। कहना न होगा कि पञ्चों को डाँटने-फटकारने में भी वह संकोच न करते। फिर भी, कुछ पञ्च ऐसे थे जिन पर इसका कोई प्रभाव न पड़ता। इन्हीं लापरवाह पञ्चों में एक थे—ठाकुर बलभद्र सिंह। वह दौलतपुर पञ्चायत में 'पठकाखेरा' नामक गांव के प्रतिनिधि थे। पञ्चायत की बैठकों में वह न तो समय से भाग लेते और न दिलचस्पी दिखाते। द्विवेदी जी पहले उनकी इस आदत को सहन करते रहे। बाद में, जब आदत न सुधरी तब बहुत नाराज हुए। एक दिन उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया—"ठाकुर साहब, यदि आप पञ्चायत की बैठक में नियमित रूप से भाग नहीं ले सकते तो किसी अन्य को अवसर दीजिए। व्यर्थ में एक स्थान रोक रखने से क्या लाभ ?"

पर, ठाकुर साहब पूरे ठाकुर साहब ही थे। उन पर इन बातों का प्रभाव कहाँ ? आचार्य जी खीझ उठे। अन्त में विवश होकर उन्होंने जिलाधीश रायबरेली को एक परिपत्र भेजा। परिपत्र क्या, वह पूरा 'मस्टर-रोल' था। १ अक्तूबर १९२९ से ३० सितम्बर, १९३० तक की हाजिरी रिपोर्ट थी।

बैठक में भाग लेनेवाले सभी प्रतिनिधियों की उपस्थिति का विवरण था—

विवरण

१.	श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी,	सरपञ्च	६४।६४
२.	,, चन्द्रपाल सिंह	पञ्च	४८।६४
३.	,, शिवगोपाल मिश्र	पञ्च	५०।६४
४.	,, हजारी नाई,	पञ्च	३४।६४
५.	श्री बद्री पांडे,	पञ्च	२६।६४
६.	,, चन्द्रिका प्रसाद तेवारी	पञ्च	१४।६४
७.	,, बलभद्र सिंह	पञ्च	८।६४

उपस्थिति का विवरण देते हुए द्विवेदी जी ने जिलाधीश को लिखा—"उपर्युक्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि मैंने वर्ष में पञ्चायत की ६४ बैठकें की हैं। जिनमें पञ्च नं० ७ श्री बलभद्र सिंह ने केवल ८ बैठकों में भाग लिया है।

यह पंचायत के लिए बहुत दुःख की बात है। मैंने बहुत खेद के साथ कई बार उनसे कहा किन्तु कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह गाँव का प्रतिनिधित्व करने में असफल रहे हैं। ऐसे अकर्मण्य व्यक्ति से पंचायत का कार्य चलना बहुत कठिन है।"[१]

बात साफ थी। द्विवेदी जी ने शत-प्रतिशत बैठक में भाग लिया था। अन्य सदस्य भी सक्रिय थे। अतः एक पंच की लापरवाही उन्हें कैसे सहन होती। आचार्य द्विवेदी जी की इस

१. अंग्रेजी से अनूदित।

रिपोर्ट के पहले भी एक घटना घटित हो चुकी थी। सब-डिवीजनल आफिसर ने दिनांक ६-१२-२९ को पंचायत का निरीक्षण किया था। उसमें भी श्री बलभद्र सिंह की वही दशा थी। अतः निरीक्षण में उन्होंने टिप्पणी लगा दी थी—"The attendence of No. 7 has been very bad." इस टिप्पणी से आचार्य जी की रिपोर्ट को बल मिला। जिलाधीश ने स्वयं पंचायत का निरीक्षण करने की इच्छा व्यक्त की। जिलाधीश ने अपने निरीक्षण के समय श्री बलभद्र सिंह को जनवरी १९२९ से दिसम्बर १९३० तक होने वाली ६६ बैठकों में केवल ६ में उपस्थित पाया। श्री बलभद्र सिंह की असावधानी एवं लापरवाही की शिकायतों की पुष्टि हो गई। जिलाधीश ने भी एक नोट लगा दिया। एक अजीब समस्या खड़ी हो गई। श्री बलभद्र सिंह अब यह अनुभव करने लगे कि वह गाँव का प्रतिनिधित्व करने में सर्वथा अयोग्य हैं। उन्हें जब जिलाधीश के निरीक्षण-नोट की सूचना मिली तब वह घबरा उठे। विवश होकर उन्होंने 'त्यागपत्र' द्विवेदी जी को देते हुए जिलाधीश को लिखा :—

"बखिदमत जनाब डिप्टी कमिश्नर साहब,

रायबरेली।

जनाब आली,

चूँकि मुझे अपने बाहरी कामों से फुरसत नहीं

मिलती, इसलिए मैं दौलतपुर की—पंचायत की मीटिंग में हाजिर नहीं हो सकता।

लेहाजा उसकी मेम्बरी से मेरा इस्तीफा है।

खादिम
बलभद्र सिह
२-१-३१

श्री बलभद्र सिंह का त्याग-पत्र प्राप्त होते ही द्विवेदी जी ने ३-१-३१ को अपनी रिपोर्ट लगाकर उसे जिलाधीश के पास भेज दिया। अपनी रिपोर्ट में आचार्य जी ने लिखा—"मैं श्री बलभद्र सिंह, पंच, पठकापुर, पंचायत दौलतपुर के त्याग-पत्र की मूल प्रति भेज रहा हूँ। इसे स्वीकार कर लिया जाय। तथा रजिस्टर में अंकित 'पञ्च-सूची' से इनका नाम काट दिया जाय। कोई योग्य व्यक्ति, जो उक्त ग्राम का प्रतिनिधित्व कर सके, मेरी दृष्टि में आया तो मैं श्रीमान् के पास उस व्यक्ति को पञ्च बनाने का सुझाव भेजूँगा।"

श्री बलभद्र सिंह से पञ्चायत का पिंड छूटा। अब नम्बर था—श्री चन्द्रिका प्रसाद का। यह ग्राम 'चहोतर' के प्रतिनिधि थे। वर्ष भर में इन्होंने केवल १४ बैठकों में भाग लिया था। श्री चन्द्रिका प्रसाद जी भी काफी लापरवाह एवं पञ्चायत की ओर से उदासीन थे। द्विवेदी जी ने दो-चार बार उन्हें भी समझाया। पर, उनकी गति में भी कोई विशेष अंतर नहीं आया। फिर भी, वह १९३२ तक लगातार कार्य करते रहे।

जब द्विवेदी जी उनकी अकर्मण्यता से ऊब उठे तब उनके भी विरुद्ध उन्होंने रिपोर्ट की। रिपोर्ट पर तत्कालीन परगनाधीश ने दिनांक ५-१२-३२ को पञ्चायत का निरीक्षण किया और श्री चन्द्रिका प्रसाद का उल्लेख करते हुए लिखा—"श्री चन्द्रिका प्रसाद ने इस वर्ष की ५७ बैठकों में से केवल ६ में भाग लिया है। सरपञ्च ने इनकी रिपोर्ट भी की है कि यह पञ्चायत के कार्य में दिलचस्पी नहीं लेते। बैठकों में उपस्थिति को कोई महत्त्व नहीं देते। यह अपने कर्तव्य की उपेक्षा कर रहे हैं। अतः इस अपराध में इन्हें पंचायत राज एक्ट की धारा ८ के अनुसार उक्त पद से हटा दिया जाय।"

परगनाधीश के इस निरीक्षण की प्रतिलिपि, जिलाधीश रायबरेली को भेजी गई। जिलाधीश ने आदेश दिया—"इन्हें हटा दिया जाय और इनके स्थान पर उक्त गाँव का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी नये पंच की नियुक्ति की जाय।" फलस्वरूप, आचार्य जी के सुझाव पर श्री जोधा अहीर नामक व्यक्ति की नियुक्ति पंच पद पर की गई। श्री बलभद्र सिंह का योग्य उत्तराधिकारी न मिलने से वह स्थान रिक्त रहा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदी जी अपने कर्तव्य के प्रति जितने जागरूक थे उतना ही सजग वे अपने पंचों को भी देखना चाहते थे। कोई पंच, यदि जनहित के लिए लगन से काम नहीं कर सकता था अथवा पंचायत की बैठकों में नियमित

भाग नहीं ले सकता था तो वह अपने आप निकम्मा बनकर या तो भाग जाता था या द्विवेदी जी उसे त्याग-पत्र देने के लिए विवश कर देते थे।

कर्मठ सरपंच एवं लापरवाह पंचों की यह जोड़ी पंचायतों के इतिहास में अमर रहेगी।

• • •

अधिकार-सीमा का प्रश्न

✣

देश की परतन्त्रता के युग में, जब आचार्य द्विवेदीजी सरपंच थे, तब पंचायतों का यह रूप न था, जो आज है। आज पंचायतें गणतांत्रिक-शासन-प्रणाली की छोटी-छोटी इकाइयाँ हैं। दूसरे शब्दों में–शासन के विकेन्द्रीकरण की दिशा में एक प्रयोग हैं। इन्हीं इकाइयों एवं विकेन्द्रीकरण पर हमारे जनतन्त्र का ढाँचा टिका है। इस ढाँचे को स्वस्थ, मांसल एवं शक्तिशाली बनाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों को समझते हुए कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहे। वह अनुशासित रूप में कानून की इज्जत करे। जब तक देश के नागरिक कानून की इज्जत करना नहीं सीखते तब तक शासन-व्यवस्था सुचारु-रूप से नहीं चल सकती। पञ्चायतों के क्षेत्राधिकार बहुत ही सीमित होते हैं। इस छोटी-सी सीमा में यदि योग्य पञ्च-सरपञ्च हुए तो जनता को बहुत कुछ दीक्षित किया जा सकता है। दीक्षा से रूढ़िवादी मनोवृत्तियों को परिवर्तित किया जा सकता है। छोटे-छोटे मामलों को प्रतीक-स्वरूप मानकर उन्हें इस बात की शिक्षा दी जा सकती है कि कानून की इज्जत कैसे की जानी चाहिए। जब कोई व्यक्ति पञ्चायत के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित करता, उसके आदेशों को न मानता, अनुशासन-हीनता दिखाता

अथवा नियमों का उल्लंघन करता तो आचार्य जी खीझ उठते थे।

दिसम्बर, १९३० की बात है। फौजदारी का एक मुकदमा उनकी पञ्चायत में भारतीय-दंड-विधान की धारा ४२६ के अन्तर्गत दायर हुआ। वादी एवं प्रतिवादी श्री गंगा सहाय बनाम जगन्नाथ वगैरह भूलपुर ग्राम के थे। पञ्चायत की ओर से, निश्चित तिथि पर उपस्थित होने के लिए समन भेजे गये। समन प्रायः सभी पर तामील हो गये किन्तु एक ने लेने से इंकार कर दिया। दो व्यक्ति केवल यह प्रदर्शित करने के लिए कि वे घर पर नहीं हैं—छिप रहे। फलस्वरूप प्रतिपक्ष के तीन व्यक्तियों पर समन तामील न हो सके। इस पर आचार्य द्विवेदी जी ने उच्च अधिकारियों को समन तामील कराने को लिखा। द्विवेदी जी की रिपोर्ट बड़े ही कठोर शब्दों में थी। भले ही उस समय उनकी कुछ भी भावना रही हो, किन्तु रिपोर्ट की अन्तिम पंक्ति से पता चलता है कि वे ग्राम-वासियों में अनुशासन-प्रियता देखना चाहते थे। सम्पूर्ण रिपोर्ट लिख चुकने के पश्चात् कुछ ग्रामीण-भाइयों के मूर्खतापूर्ण कार्यों पर क्षोभ प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा—"यह आवश्यक है कि इन व्यक्तियों को कानून की इज्जत करना सिखाया जाय।"[१] आचार्य द्विवेदी जी, कानून के पण्डित थे। सरपञ्च होने के नाते वे अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक भी थे। माल एवं फौजदारी का

१. मूल अंग्रेजी का हिन्दी अनुवाद

जो मुकद्दमा उनकी अधिकार-सीमा के अन्तर्गत होता, उसे वह दूसरे न्यायालय में नहीं जाने देते थे। यदि किसी न्यायालय में इस प्रकार का कोई मुकद्दमा चलता रहता था तो वह उसे सम्बन्धित मजिस्ट्रेट को सम्मानपूर्वक पत्र लिखकर सूचित कर देते थे कि—"अमुक मुकद्दमा जो आपके न्यायालय में दायर हुआ है वह मेरी पंचायत के अधिकार-क्षेत्र में है।" आचार्य द्विवेदी जी की लगभग १७ वर्षों की सरपञ्ची की अवधि में पञ्चायत दौलतपुर की अधिकार-सीमा के अन्दर हो सकने वाला कोई भी मुकद्दमा बाहर नहीं जाने पाया। किसी मजिस्ट्रेट ने, यदि स्वीकार भी कर लिया तो द्विवेदी जी ने तत्काल ही उस मजिस्ट्रेट को, उस त्रुटि की ओर इंगित करते हुए मुकद्दमे को पंचायत में स्थानान्तरित करने की माँग की।

जून १९३० में श्री लाल तिवारी, सा० चिन्ताखेरा के विरुद्ध एक मुकद्दमा परगनाधीश डलमऊ, के न्यायालय में चल रहा था। वह मुकद्दमा ऐसा था, जिस पर पंचायत दौलतपुर को ही विचार करने का अधिकार था। फलस्वरूप प्रतिवादी श्री लाल तिवारी ने एक प्रार्थना-पत्र दिया कि उनके विरुद्ध जो मुकद्दमा, उक्त न्यायालय में चल रहा है, वह पंचायत दौलतपुर में स्थानान्तरित कर दिया जाय। किसी कारणवश वह मुकद्दमा स्थानान्तरित न हो सका। इस पर आचार्य द्विवेदी जी ने परगनाधीश डलमऊ को एक पत्र लिखा—

ग्राम-पंचायत दौलतपुर
५ जुलाई, १६३०

श्री लाल (श्रीपाल नहीं) सा० चिन्ताखेरा, प्रतिवादी ने समनों की प्रति मुझे दिखाते हुए एक आवेदन-पत्र दिया है कि उनके विरुद्ध जो मुकद्दमा परगनाधीश डलमऊ के न्यायालय में चल रहा है, वह ग्राम-पंचायत दौलतपुर में स्थानान्तरित कर दिया जाय। ग्राम चिन्ताखेरा निस्संदेह पंचायत दौलतपुर की अधिकार-सीमा के अन्तर्गत है। भारतीय दंड-विधान की धारा ३२३ के अंतर्गत इस पंचायत को ही उस पर विचार करना चाहिए। किन्तु मुकद्दमा एक न्यायालय में चल रहा है, अतः न्यायालय के सम्मान को दृष्टिगत करते हुए, पंचायत उक्त प्रार्थना-पत्र पर विचार करने में अपने को सर्वथा असमर्थ पाती है।

ग्राम पंचायत एक्ट की ३१ नं० ६, १६२० का निम्नांकित उद्धरण देखें।

"कोई मजिस्ट्रेट किसी आक्षेप को प्राप्त करने पर जो कि पञ्चायत की अधिकार-सीमा के अन्तर्गत आता है, यदि उसमें स्थानान्तरण के उचित कारण नहीं दिये गये हैं तो उसे अपने न्यायालय से पञ्चायत में विचारार्थ स्थानान्तरित कर देना चाहिये।"

अतः उक्त धारा के अनुसार सम्बन्धित मजिस्ट्रेट को, यदि वादी के प्रार्थना-पत्र में, उनके न्यायालय में अभियोग दायर करने के उचित कारण नहीं दिखाये गये तो वे उसे उक्त ग्राम-पञ्चायत को भेज दें। जब कि प्रतिवादी उनके पास स्थानान्तरण की प्रार्थना कर चुका है।[1]

ह० महावीर प्रसाद द्विवेदी

सरपञ्च

ग्राम-पञ्चायत दौलतपुर।

५ जुलाई १९३० को द्विवेदी जी ने उक्त रिपोर्ट भेजी। १८ जुलाई को मुकद्दमा स्थानान्तरित होकर पञ्चायत में आ गया।

एक और उदाहरण लीजिये—श्री सत्यनारायण पुत्र कुंचित, सा० महमदपुर (उन्नाव) बनाम बालगोविन्द पुत्र मन्नी सा० चहोतर (रायबरेली) का एक मुकद्दमा ग्राम-पञ्चायत दौलतपुर में चल रहा था। उसी समय वादी ने द्विवेदी जी को एक प्रार्थना-पत्र दिया और उन पर लांछन लगाते हुए लिखा कि—'मेरा मुकद्दमा जो आपके यहाँ चल रहा है, उसे अन्य न्यायालय में स्थानान्तरित कर दिया जाय क्योंकि मुझे इस पञ्चायत से न्याय की कोई आशा नहीं है।' प्रार्थना-पत्र उर्दू में था। उसमें पाँच मुख्य आक्षेप थे। प्रत्येक आक्षेप के समक्ष जो नोट द्विवेदी जी ने लिखा वह पठनीय तथा रोचक है।

---

१. मूल अंग्रेजी से अनूदित।

आक्षेप (१) : यह कि पञ्च साहबान में से एक पञ्च बद्री पांड़े हैं। जो सत्यनारायन मुद्दई के भांजे हैं। यह सत्य-नारायन, पण्डित चन्दिका की ससुराल के अजीज भी होते हैं, और उनके निकट सम्बन्धी भी हैं। चन्दिका प्रसाद मेरे लड़कों के गुजिश्ता दावा में, जो मन्दिर की बाबत जनाब हाकिम परगना डलमऊ के इजलास में चला था, मुद्दालेह थे। उनकी मंशा से यह दावा इस पञ्चायत में दायर हुआ है।"

उत्तर : "चन्दिका प्रसाद पञ्च नहीं। बद्री पांड़े कार्रवाई पञ्चायत से अलग रहेंगे।

आक्षेप (२) : "मुझे आप पञ्चों से न्याय की कोई आशा नहीं है।"

उत्तर : "पहले क्यों बयान दिया कि फैसला यहीं चाहते हैं।"

आक्षेप (३) : इससे सम्बन्धित एक दरख्वास्त मैंने डिप्टी कमिश्नर रायबरेली के यहाँ दी है। मुझे इजाजत मिली है कि मैं पञ्चों को सूचित करूँ कि मेरा मुकद्दमा पञ्चायत एक्ट की धारा ५१ के मुताबिक बदल दिया जाय। जिससे उसका फैसला सदर के किसी हाकिम के सामने हो सके।

उत्तर : "कैसी दरख्वास्त दी और क्या हुक्म हुआ इसकी इत्तिला पंचायत को नहीं। ये नालिशें दफा ५१ के अन्दर नहीं आतीं।"

आक्षेप (४) : पंचायत का अख्तियार महज ५० रु० तक है। यही वजह है कि सत्यनारायन ने झूठे दावे की दो डिगरियाँ कराकर, दो दावे आप पंच साहबान के यहाँ दायर किये हैं।

उत्तर : "अलग-अलग चाँदी और नकद रुपये की बाबत नालिशें हैं। पंचायत की क्षमता के भीतर हैं।"

आक्षेप (५) : चूँकि आप पंच साहबान को मेरी दरख्वास्त लेने में तकलीफ थी, लेहाजा मैंने उसे रजिस्ट्री से भेजा है।

उत्तर : "पंचायत ने कभी भी दरख्वास्त लेने से इंकार नहीं किया। आपकी एक दरख्वास्त पहले भी ली जा चुकी है।"

सभी आक्षेपों का ब्योरेवार अलग-अलग उत्तर देने के बाद द्विवेदी जी ने प्रार्थना-पत्र पर अंतिम आदेश लिखा—

पञ्चों का हुक्म

"इस दरख्वास्त में जो वजूहात दिये गये हैं, उनमें कुछ भी जान नहीं। मामला साफ है। दफा ५१ आयद नहीं। इंसाफ का खून और मुखालिफ फरीक को जेर-बार करने की कोशिश में यह चाल चली गई है। डिप्टी कमिश्नर के इजलास में कैसी दरख्वास्त दी गई है, और उस

पर क्या हुक्म हुआ है, इसकी कोई इत्तिला उस इजलास से पंचायत को नहीं।

लेहाजा दरख्वास्त नामंजूर की जाती है।

ह० महावीर प्रसाद द्विवेदी

उक्त दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि आचार्य द्विवेदी जी अपने अधिकारों का प्रयोग कितनी निर्भीकता से करते थे। वह सदैव इस बात का ध्यान रखते थे कि कानून की हत्या न होने पाये। पंचों की जो 'बेंच' बैठती थी, उसमें यदि कोई वादी का संबंधी होता तो वे नियमानुसार उसे हटाकर न्याय की रक्षा करते थे। श्री बद्री पांड़े को उक्त मुकद्दमे की कार्यवाही में भाग न लेने देना उनकी न्याय-प्रियता का प्रमाण है। साथ-ही-साथ प्राप्त प्रार्थना-पत्र के हर पहलू पर विचार करके निर्णय देना आचार्य जी जैसे नीर-क्षीर-विवेकी का ही कार्य था।

●●●

अबलाओं की पुकार

नारी, नारीत्व, एवं नारी-जीवन पर आचार्य द्विवेदी जी ने क्या नहीं लिखा ?

जी हाँ, मैं फिर दुहराता हूँ—उन्होंने क्या नहीं लिखा ? आप विश्वास करें, या न करें, बात एक सौ एक नये पैसे सत्य है। रम्भा, कुमुद-सुन्दरी, महाश्वेता एवं इंदिरा आदि का तो उन्होंने गुण-गान किया ही है, 'महिला परिषद्' तक के गीत भी उन्होंने गाये हैं। 'कान्यकुब्ज अबला' के साथ-साथ उन्होंने सिर पीट कर विलाप किया है। 'बाल-विधवा' के साथ चीत्कार भी किया है। यही नहीं, 'बाल-विधवा विलाप'[१] नाम्नी कविता में उन्होंने यहाँ तक कह डाला है कि—"जहाँ निर्बल नारियाँ इतना क्लेश पायें, उस बुद्धि, बल और वैभव को धिक्कार है। उस देश को धिक्कार है।"

बोलिये ? अब और क्या सुनना बाकी रह गया ?

देशवासियों के लिए आचार्य जी की यह चुनौती उनकी मनोव्यथा ही व्यक्त करती है। 'मुँहफट' भाषा में समाज को एक चेतावनी देती है। उन्होंने नारी-जीवन पर जो कुछ लिखा है वह कल्पना के आधार पर नहीं, प्रत्यक्ष अनुभवों के सहारे ही लिखा

---

१. ७ अक्तूबर १८९८ ई० में 'भारतमित्र' में प्रकाशित।

है। सरपञ्च होने के नाते, उस सत्य का उन्होंने साक्षात्कार किया जो सामाजिक विडम्बना का कारण बना है। गाँवों में प्राय: यह देखा जाता है कि ताकतवर एवं सरहंग व्यक्ति बहिनों-माताओं, असहाय अबलाओं, एवं निराश्रित विधवाओं को परेशान किया करते हैं। उन्हें कष्ट देते हैं। उनकी संपत्ति हड़पने के लिए भाँति-भाँति के कुचक्र रचते हैं। अपनी स्वार्थ-साधना के लिए उनके साथ वे क्या नहीं करते ? यह सब आचार्य जी ने गाँव में, समाज में और देश में देखा। उनका भावुक मन, ग्राम-वासियों के इस आचरण पर हाहाकार कर उठा। उन्होंने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से विधवा बहिनों-माताओं का यह पीड़ित स्वर जन-जन तक पहुँचाया। इसका परिणाम यह हुआ कि गाँववालों के कुचक्र विफल होने लगे। दु:खी अबलाओं को आचार्य द्विवेदी जी के रूप में एक सबल सहायक मिल गया।

रायबरेली जिले के पश्चिमांचल में, उन्नाव जिले की सीमा पर एक गाँव है। इस गाँव का नाम 'चहोतर' है। यहाँ कोई व्रजमोहन शुक्ल रहते थे। जब उनका देहान्त हो गया तब उनकी विधवा की संपत्ति एक फर्जी 'दस्तावेज' लिखा कर उसके देवर के लड़के ने हड़प ली। उस विधवा ने इस घटना की जाँच एवं उचित न्याय के लिए पञ्चायत दौलतपुर से प्रार्थना की। द्विवेदी जी ने इस घटना की छान-बीन अपनी पूरी शक्ति से की। कठिन परिश्रम एवं जाँच के पश्चात् वास्तविक 'सत्य' सामने आया।

पंचों को विश्वास हो गया—दस्तावेज फर्जी है। विधवा को परेशान करने के लिए ही यह कुचक्र रचा गया है। पंचायत ने मामले में समझौता करा दिया। दोनों का अलग-अलग बँटवारा हो गया। पंचायत के मुकद्दमे का खर्च सात रुपये दो आने अभियुक्त से विधवा को दिये जानेका आदेश हुआ। अभियुक्त इसे कब माननेवाला था? वह चुप रहा। मामला भी कुछ दिनों तक दबा रहा। बाद में पुनः उस असहाय अबला को परेशान किया जाने लगा। इसका कारण स्वयं पंचायत की एक गलती थी। पंचायत ने वह फर्जी दस्तावेज पुनः अभियुक्त रामलाल को वापस कर दिया था। परिणाम यह निकला कि रामलाल की माँ ने दस्तावेज के आधार पर उस विधवा को परेशान करना प्रारम्भ कर दिया। इस परेशानी से ऊब कर विधवा व्रजमोहन ने २४ अप्रैल १९३१ को पंचायत में पुनः प्रार्थना-पत्र दिया; जो इस प्रकार था :—

२४ अप्रैल, १९३१

श्रीमान् सरपंच साहब,

दौलतपुर।

श्रीमान् की सेवा में हम गरीब, अनाथ, विधवा व्रजमोहन शुक्ल, चहोतर की हूँ। हमारे देवर का लड़का—रामलाल शुक्ल, हमारी सब जङ्गम मिल्कियत जबरदस्ती ले लिया और एक फर्जी दस्तावेज हमारी सवत के पास लिखाया।

बाद उसके यह मुकद्दमा बजरिये पंचायत हो गया कि दस्तावेज फर्जी है। और हमको पंचों ने ७ रु० २ आना खर्च दिलाया। हमारा हिस्सा पंचों ने बँटवारा करा दिया, परन्तु दखल नहीं दिलाया तथा फर्जी दस्तावेज भी हमारी देवरानी के पास मौजूद है, सो हमसे रुपया माँगती हैं।

इसलिए हम हुजूर के इजलास में दावा करती हूँ कि हमारे अनाथ के ऊपर दया करके हमको उचित न्याय दिया जाय।

आपकी दया की भिखारिन

विधवा

व्रजमोहन शुक्ल

आचार्य द्विवेदी जी पुनः इस मामले में पड़े। विधवा की पुकार पर वह रुक न सके। उन्होंने उसका उचित अधिकार उसे वापस दिलाया। इसके बाद ही एक मनोरंजक घटना घटित हुई।

स्व० व्रजमोहन शुक्ल की विधवा पत्नी को उसकी देवरानी के लड़के रामलाल और स्वयं देवरानी ने जिस प्रकार परेशान किया था, अब वे स्वयं परेशानी में पड़ गये। रामलाल की आर्थिक स्थिति खराब थी। वह गाँव में अधिक समय तक रह न सका। नौकरी की तलाश में किसी शहर चला गया। अब घर में केवल उसकी माँ रह गई थी। यह वही माँ थी, जिसने

अपनी जेठानी ब्रजमोहन शुक्ल की विधवा को झूठा दस्तावेज लिखा कर परेशान किया था। अपनी इन काली करतूतों के कारण वह समाज में चर्चा का विषय बनी थी। रामलाल के जाते ही वह स्वयं उलटे कुचक्र में फँस गई। नागनाथ को साँपनाथ मिल गये। मामला यों था—गूदी नामक किसी व्यक्ति से उसने कर्ज लिया। कर्जे में गूदी ने मनमानी शर्तें लिखा कर उससे अँगूठा-निशानी ले ली। नियत समय पर जब 'पुरनोट' का व्याज एवं कर्जे की किस्तें न मिलीं तब गूदी ने दावा दायर कर दिया। रामलाल की माँ को पंचायत में उपस्थित होने का मौका मिला। वह घबरा उठी। समन प्राप्त होने पर भी वह वहाँ न गई। एक पक्ष की अनुपस्थिति में, पंचायत ने अपने कार्यक्रम के अनुसार ११ जुलाई, १९३२ को एकपक्षीय निर्णय दे दिया। फैसले की सूचना प्राप्त होने पर उसने द्विवेदी जी को दुःख-भरा पत्र लिखा :—

"श्रीमान् बाबू महावीर को मेरा हाथ जोड़कर विनय पहुँचै।

हमारा यह कहना है कि समन मुझे मिला। मैं गरीब हूँ पर कर्जा तो इज्जत के लिए लिया जाता है। मैं इनसे रुपया नहीं लाई हूँ। इनकी भौजाई, लोदे की दुलहिन से लाई हूँ। सो एक रुपया के डेढ़-दो पैसा बियाज दिया। पचीस रुपया के साढ़े-नौ आना सूद हमने दिया। महीना में सोरह रुपिया बियाज के मैं दे चुकी हूँ। जब हमसे इन्होंने

रुपिया माँगा तो हमने कहा कि पाँच-पाँच रुपिया दे दूँगी। एकदम से मैं नहीं दे सकती। तब गूदी हमसे सावन सुदी एकादशी को बोले कि हम तुमसे सूद कुछ न लेव। तुम हमको पांचय-पांच रुपिया देव। हमको चिट्ठी लिख देव। तब देवीदयाल तेवारी के हाथन चिट्ठी करवाय लिया। हमसे अंगूठा लगवाय लिया। डेढ़ रुपिया सूद लिख दिया। हम चवन्नी कहा था। कि हम चवन्नी देब। सो, बोले कि लेते-देते बखत देखा जायगा। जब-जब हमसे सूद माँगा तब-तब हम बोली कि रुपिया सैकड़ा लिख लेव। न उन्होंने लिखा, न हमने दिया। मैं औरत की जात वहाँ नहीं आ सकती। जैसा आपकी समझ पड़े तैसा करो।

रामलाल शुक्ल को माँ

आचार्य द्विवेदी जी ने उक्त पत्र पढ़ा। उन्हें पुरानी घटना याद हो आई। जैसे को तैसा मिल गया था। इधर मुकद्दमे का निर्णय भी हो चुका था। विवशता थी। द्विवेदी जी ने उक्त पत्र पर अंग्रेजी में नोट लिखा—"Received too late, at 10 A.M. on 12-7-32, while suit decided on 11-7-32. (बहुत विलम्ब से दिनांक १२-७-३२ को पूर्वाह्ण में दस बजे प्राप्त हुआ; जबकि मुकद्दमा ११-७-३२ को ही फैसल हो चुका है)। एक विधवा के साथ उसने जिस प्रकार की धोखा-धड़ी की थी, उसे अपनी करनी का फल प्राप्त हो गया।

इसी प्रकार एक दूसरा मामला यों है—'हरीपुर' ग्राम के

ठा० रामसिंह की विधवा धर्मपत्नी श्रीमती कलावती तथा उक्त ग्राम की श्रीमती हुबराजी—विधवा मोहन सिंह ने दो मुकद्दमे अलग-अलग श्री शिवमंगल पुत्र रामदयाल भट्ट पर चलाये। इन दोनों मुकद्दमों में ग्राम-पंचायत दौलतपुर ने क्रमशः चार तथा दो रुपये जुर्माना किया। जुर्माना अदा करने के लिए दस दिन का समय दिया गया। अभियुक्त जुर्माने की धनराशि देने में असफल रहा। इस पर द्विवेदी जी ने परगनाधीश महोदय को इसकी रिपोर्ट भेजी। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने अभियुक्त से जुर्माना वसूल कराने की माँग की। रिपोर्ट की सूचना पाते ही अभियुक्त पंचायत में रुपया जमा कर गया। इसके पश्चात् द्विवेदी जी ने, परगनाधीश को दूसरी सूचना १५–८–३१ को देते हुए लिखा—

> "कलावती बनाम-शिवमंगल सा० हरीपुर के मुकद्दमा नं० २० के विषय में जुर्माना न वसूल होने के लिए जो रिपोर्ट मैंने श्रीमान् जी के यहाँ भेजी है, वह रद्द समझा जाय। रुपया वसूल हो चुका है।"

कभी-कभी द्विवेदी जी उस समय बहुत रुष्ट हो जाते थे, जब वह समझते थे कि उनको धोखा दिया जा रहा है; अथवा वादी झूठ बोल रहा है। श्रीमती चिरौंजा विधवा रामगुलाम पाण्डेय, सा० भूलपुर बनाम-लछिमन पुत्र गंगा पासी का एक मुकद्दमा पंचायत दौलतपुर में चल रहा था। दिनांक १५-६-३३ को चालीस रुपये तेरह आने की डिगरी श्रीमती चिरौंजा के पक्ष में

हुई। लछिमन को आदेश हुआ कि वह २० रुपया इसी अगहन में दे दे और बीस रुपया तेरह आने की दूसरी किस्त आगामी वैसाख में दे। जब पंचायत के आदेशानुसर उसने प्रथम किस्त न दी तब श्रीमती चिरौंजा ने कुर्की के लिए आवेदन किया। इस पर लछिमन द्विवेदी जी के पास आया और उसने बताया कि मैंने श्रीमती चिरौंजा को एक किस्त का रुपया दे दिया है। वह झूठ बोलती है। इस पर द्विवेदी जी को बहुत क्रोध आया। उन्होंने श्रीमती चिरौंजा के प्रार्थना-पत्र पर आदेश लिख उससे पूछा—"क्यों झूठ लिखाया कि लछिमन से एक पैसा नहीं वसूल हुआ।" इस पर चिरौंजा ने उत्तर दिया—"वास्तविकता यह नहीं है। लछिमन ने जो रुपया मुझे दिया है वह दूसरे हिसाब का है। उन रुपयों का संवंध डिग्री वाले रुपयों से नहीं है।" संतोषजनक उत्तर पाकर द्विवेदी जी का क्रोध शांत हुआ।

इसी प्रकार एक चौथी विधवा का मजेदार मामला पंचायत दौलतपुर में आया। १९२९ में श्री भगवानदीन तेवारी नामक किसी व्यक्ति ने कुचक्र रच कर स्व० मान्धाता शुक्ल की विधवा-पत्नी के ऊपर एक मुकद्दमा पंचायत दौलतपुर में दायर किया। मामला पेचीदा एवं अपने ढंग का अनोखा था। बात यह थी कि—"श्री भगवानदीन तेवारी ने अपना आम का बाग श्री परमानन्द मिश्र की लड़की श्रीमती राजे के हाथ २२ रु० में बेचा। जिस समय बाग बेचा गया, उक्त विधवा मौके पर

मौजूद थी। उसने श्री भगवानदीन से केवल इतना कहा था कि रुपये का अंदेशा न करो; वह मिल जायगा। बाग श्रीमती राजे को दे दो। श्री भगवानदीन ने उक्त विधवा की जमानत पर बाग दे दिया। पन्द्रह दिनों के पश्चात् श्रीमती राजे ने उक्त बाग छोड़ दिया। तब श्री भगवानदीन ने वही बाग एक सुनार के हाथ बेच दिया। सुनार फसल भर आम खाता रहा। अब श्री भगवानदीन को दो-तरफा रुपया वसूल करने की चाल सूझी। उन्होंने जमानत करनेवाली विधवा मान्धाता पर २२ रु० की वसूली का दावा कर दिया। पंचायत की ओर से श्रीमती मान्धाता को समन भेजा गया। समन पाने पर, उक्त विधवा ने मामले का स्पष्टीकरण करते हुए द्विवेदी जी को लिखा—

"मैं परदानशीन औरत हूँ। मेरा आमद-रफ्त बाहर जाने का कम रहता है। इस मुकद्दमे का मुफस्सिल हाल यह है।" और उसने बाग दोबारा सुनार के हाथ बेचे जाने का भंडाफोड़ करते हुए लिखा कि—"इस का रुपया मुझसे, अथवा श्रीमती राजे से नहीं, उस सुनार से वसूल होना चाहिए जिसके हाथ इन्होंने दोबारा बाग बेचा है।"

छान-बीन के पश्चात् द्विवेदी जी ने मुकद्दमा खारिज कर दिया।

इस प्रकार आचार्य जी ने एक सरपंच के रूप में, असहाय विधवाओं की जो सहायता की, ग्रामीणों के कुचक्र से उन्हें बचाया, वह इस क्षेत्र में चिरस्मरणीय रहेगा। ●●●

निर्माण की ओर

❖

फरवरी, १९२१ की बात है। अवध में जमींदारी उन्मूलन के लिए आन्दोलन चल रहा था। प्रतापगढ़ एवं रायबरेली इसके केन्द्र थे। बाबा रामचन्द्र ने ऐसी शंखध्वनि की कि प्रदेश का भूखा-नंगा किसान प्राणों की आहुति देने निकल पड़ा। हुआ भी यही, जुलाई १९२१ को 'सई' नदी का पानी लहू-लुहान हो गया। नदी के इस पार राष्ट्रनायक पं० जवाहर लाल नेहरू थे और उस ओर निहत्थे किसान। नेहरू जी किसानों तक पहुँच भी न पाये थे कि गोलियाँ बरसने लगीं। गणेशशंकर विद्यार्थी जी का 'वीरपाल हत्यारा' इसी काण्ड का तथाकथित अगुआ था, जिसने सर्वप्रथम निहत्थे किसानों पर वार किया था।

अपने ही जिले में यह सब देखकर द्विवेदी जी की आत्मा तड़प उठी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की—"तालुकेदारों के फार्म खोल लेने से कृषि की उन्नति नहीं हो सकती। पूरी उन्नति तो तभी होगी जब दस-बीस बीघे जमीन जोतनेवाला किसान भी वैज्ञानिक ढंग से खेती करे।"

उपर्युक्त उद्धरण से पता लगता है कि आचार्य द्विवेदी जी ने अब से लगभग ४० वर्ष पूर्व ही इस बात का अनुभव कर

लिया था, कि तालुकेदारों के बड़े-बड़े फार्मों से, खाद्य-समस्या नहीं सुलझ सकती। छोटे-छोटे किसान जब वैज्ञानिक ढंग से खेती करने लगेंगे तभी इसका समाधान होगा। अन्न की पैदावार बढ़ेगी, गाँव समृद्ध होंगे। आचार्य जी की इस बात का मूल्य तब भले ही न रहा हो, आज देश इसका अनुभव कर रहा है। अनुभव ही नहीं, सरकार एवं जनता इसी ओर बढ़ रही है और द्विवेदी जी के फरवरी १९२१ में कहे गये शब्दों का औचित्य सिद्ध हो रहा है।

किसानों को वैज्ञानिक ढंग से खेती करने का सुझाव तो आचार्य द्विवेदी जी ने दे दिया था; किन्तु उन्होंने उस समय यह नहीं सोचा था कि यह बेचारा निर्धन किसान यंत्र खरीदने के लिए, पैसा कहाँ से लायेगा? आज भले ही किसानों को बैल से लेकर ट्रैक्टर खरीदने तक की तकावी मिल जाती हो। 'डिबलर' से लेकर 'ट्यूबवेल' तक के लिए आसानी से पैसा प्राप्त हो जाता हो। पञ्चायतों एवं विकास-क्षेत्रों द्वारा खेती के नये-नये ढंग बताये जाते हों। कृषि एवं विकास-अधिकारी खेतों की मेड़ पर जा-जाकर जापानी ढंग से धान तथा उत्तर-प्रदेशीय ढंग से गेहूँ पैदा करने की शिक्षा देते हों। रबी एवं खरीफ दोनों फसलों में उत्पादन-अभियान चलते हों। किन्तु, ब्रिटिश-काल में, जब द्विवेदी जी सरपंच थे, तब ये साधन सर्व-सुलभ न थे। प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं हो सकते थे। ऐसी दशा में, आचार्य द्विवेदी जी का सुझाव स्वप्नवत् था।

उस समय सरकार द्वारा वैज्ञानिक यन्त्रों के लिए ऋण अथवा तकावी देना तो दूर रहा, छोटे-छोटे निर्माण-कार्यों के लिए भी पैसा नहीं मिल पाता था। मिलता भी था तो बड़ी कठिनाई से। कभी-कभी तो यह भी होता था कि पञ्चायत द्वारा सार्वजनिक-निर्माण-कार्यों में लगाई गई धन-राशि भी घपले में पड़ जाती थी। अधिक क्या लिखूँ, नहर एवं सिंचन-विभाग के ऐक्ट सं० ८, सन् १८७३ की धारा ३, उपधारा (१) में जो परिभाषित है, उसकी मरम्मत के लिए भी रुपया नहीं मिल पाता था। पंचायतघर, पुल-पुलियों, कुओं तथा हैण्डपम्पों की बात तो दूर रही।

आचार्य द्विवेदी जी के कदम इस तूफान में आगे बढ़े। पर, तूफान इतना तेज था कि वह डगमगा उठे। सिर मुड़ाते ही ओले पड़ने लगे। बात यह थी कि १९२९ में उन्होंने अपनी सीमा के अंतर्गत चार पुराने कुओं की मरम्मत कराई। मरम्मत का संपूर्ण व्यय १९० रु० होता था। आचार्य जी को आशा थी कि सरकार से आवश्यक सहयोग मिल जायगा। उन्होंने सहायता के लिए जिला अधिकारियों को लिखा भी; पर सफलता न मिली। फलस्वरूप १-१०-२९ को उन्होंने जिलाधीश को पत्र लिखा —"जनहित के दृष्टिकोण से मैंने इन कुओं की मरम्मत कराई है, जिससे ग्राम-वासियों को सुविधा मिले। इन कुओं की दशा बहुत ही खराब थी। अतः मेरे कार्य को देखते हुए, सरकार से उचित सहायता दिलाने की कृपा की जाय।" द्विवेदीजी

का यह पत्र लाल फीते में ही बँधा रह गया। उनके सार्वजनिक कार्यों को कोई महत्त्व न दिया गया। द्विवेदी जी भी कब चुप बैठनेवाले थे। वह बराबर स्मृति-पत्र (Reminder) भेजते रहे। उनके स्मृति-पत्रों का क्रम १९२९ से लेकर १९३६ अर्थात् ८ वर्षों तक चलता रहा। न द्विवेदी जी स्मृति-पत्र भेजने से माने, न सरकार ने उन्हें एक पैसा दिया।

२४ फरवरी, १९३६ को जब परगनाधीश ने पंचायत का निरीक्षण किया, तब द्विवेदी जी ने अपनी आठ वर्ष पुरानी माँग दुहराई। परगनाधीश ने अपने निरीक्षण में उसका उल्लेख करते हुए लिखा—"सरपंच ने मुझसे बताया कि सफाई एवं विकास-कार्यों में लगभग ८ वर्ष पूर्व पंचायत ने कुछ कार्य किया था। किन्तु उसकी सुनवाई ही नहीं हुई। वह रिपोर्ट भी इतने वर्षों से अब तक प्रकाश में नहीं आई। पंचायत-क्लर्क इस बात का स्पष्टीकरण करें कि उस पर किसी प्रकार का कोई आदेश हुआ है, अथवा नहीं।" पंचायत की उक्त निरीक्षण रिपोर्ट जब जिलाधीश के पास पहुँची तो उन्होंने भी नोट लिख दिया—"पंचायत-क्लर्क रिपोर्ट दें।" इसके पश्चात् क्या हुआ, भगवान् जाने। क्योंकि इसके बाद की कोई कार्यवाही नहीं मिल सकी! यह थी तत्कालीन पंचायतों की दशा, और यह था निर्माण-कार्य। आज के निर्माण-कार्यों से जब इसकी तुलना की जाती है तब आकाश-पाताल का अंतर प्रतीत होता है। ऐसी दशा में, कौन-सा ऐसा सरपंच होगा, जिसका उत्साह भंग न हो जाय। किन्तु इस

घटना से द्विवेदी जी हतोत्साह नहीं हुए। वे समझते थे कि इन विदेशियों के हृदय में हमारे देश के प्रति कोई मोह नहीं है और न हमारी दुर्दशा पर उनके अंतस् में करुणा ही है। पंचायतों का जो ढोंग रचा गया है, वह एक तमाशा मात्र है। इन पंचायतों का लक्ष्य जन-कल्याण नहीं है, केवल शोषण है। यह पीड़ा द्विवेदी जी को प्रकाश देती रही। उनमें जो उमंग थी, वह किसी प्रकार दबाई न जा सकी। वह कर्तव्यविमुख न हुए। इसके बाद उनका दूसरा कदम बढ़ा।

सभी हिन्दी-प्रेमी जानते हैं कि दौलतपुर का मार्ग इतना ख़राब था कि वह अपने किसी भक्त को वहाँ आने की सलाह नहीं देते थे। लालगंज अथवा तकिया स्टेशन से दौलतपुर लगभग सोलह मील है। यह मार्ग इतना सुन्दर है कि यात्री को सोलहों कला के दर्शन होते हैं। द्विवेदी जी इसी कष्ट से त्राण देने के लिए सबको दौलतपुर आने से रोका करते थे। किसी से मिलना आवश्यक होता तो स्वयं कष्ट उठाकर कानपुर अथवा प्रयाग चले जाते। यह पीड़ा द्विवेदी जी को जीवन भर अखरती रही। वे समझते थे कि किसी प्रकार इस सड़क का निर्माण भी कराया जाय, तो सरकार टका नहीं देगी। फिर भी उन्होंने दो एक पुल बनवाये।

१७ फरवरी १९३३ को डलमऊ-तहसील के तहसीलदार दौलतपुर पहुँचे। उन्होंने पंचायत का निरीक्षण किया। निर्माण

कार्यों को भी देखा। द्विवेदी जी कब चूकनेवाले थे। उन्होंने सफाई की एक योजना उनके समक्ष पेश की। इसका अनुमानित व्यय लगभग दो-सौ रुपये था। तहसीलदार साहब ने द्विवेदी जी का सुझाव मान लिया तथा अपने निरीक्षण-पत्र में लिखा कि ग्राम चिन्ताखेरा, हरीपुर, खेमानखेरा में जो धनराशि निर्माण कार्यों में खर्च होगी, उसका आधा भार पंचायत वहन करे और अर्द्ध भाग के लिए सरकार को लिखा जाय। तथा निवेदन किया जाय कि—"पब्लिक-हेल्थ-डिपार्टमेंट से वह रुपया दिला दे, क्योंकि इसका संबंध स्वच्छता से है।" निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता कि इस पर क्या हुआ। हो सकता है इस योजना की भी वहीं दशा हुई हो जो कूपों के जीर्णोद्धार की हुई थी।

सब से मजेदार बात तो यह थी कि अपने व्यक्तिगत प्रभाव से द्विवेदी जी पंचायत द्वारा जो निर्माण-कार्य करा देते, अधिकारी उसकी मुक्त-कंठ से प्रशंसा करते; पर रुपया माँगते ही बगलें झाँकने लगते। सरकार के इस उपेक्षा-पूर्ण रवैये से द्विवेदी जी ने आत्म-बल का सहारा लिया। पंचायत के पैसे से उन्होंने नाले के ऊपर एक पुल बनवाया। जिलाधीश, रायबरेली ने उस पुल को देखा तो बड़े गर्व से लिखा—"मैने ग्राम के बाहर, नाले पर बने हुए पुल को देखा। इसे पंचायत ने अपने खर्चे से बनवाया है। पंचायत के धन का बड़ा ही सुंदर उपयोग किया गया है।" यह थी पंचायत की दशा, और यह था अंग्रेजी

शासन का निर्माण-कार्य ! यदि द्विवेदी जी के स्थान पर कोई अन्य सरपंच होता तो त्याग-पत्र दे देता। पर, द्विवेदी जी अपनी कर्मठता के बल पर बालू से तेल निकालते रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि पंचायत दौलतपुर की ओर से वहाँ एक प्राइमरी पाठशाला का निर्माण हो गया। इस पाठशाला का संचालन पंचायत ही करती थी। पाठशाला की व्यवस्था एवं मरम्मत आदि में जो धन व्यय होता था उसकी कुछ रसीदें मुझे देखने को मिली हैं। उन रसीदों से पता लगता है कि पाठशाला के एक-एक पैसे का कितना सदुपयोग होता था।

निर्माण-कार्यों की जब यह दशा थी तब द्विवेदी जी के वैज्ञानिक ढंग से खेती के स्वप्नों को कहाँ ठिकाना मिलता ? फिर भी उन्होंने प्रान्तीय बैंकिंग कमेटी के पास एक प्रश्नावली भेजी। उसमें वैज्ञानिक ढंग से खेती के लिए उन्होंने सरकार से चौदह प्रश्न किये थे। यों, मूल प्रश्न एक ही था, पर उसे चौदह भागों में बाँट दिया गया था। द्विवेदी जी को इसका जो उत्तर मिला वह बहुत ही मजेदार है। प्रमुख प्रश्न था—

१. "कृषि के लिए रुपया उधार मिलना और उस की सुविधाएँ ?"

द्विवेदी जी की इस प्रश्नावली का जो उत्तर उन्हें मिला, उस पर उन्होंने टिप्पणी लिखी—"प्रयोजन नं० १०, १३, १४ का उत्तर "नहीं" बाकी सबका "हाँ"। साथ-ही-साथ द्विवेदी जी से

यह भी पूछा गया था कि—"किसान अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए रुपया कहाँ से उधार लेता है ?" उत्तर में द्विवेदी जी ने लिखा—"किसान देहात के उधार देनेवाले छोटे-छोटे महाजनों एवं गृहस्थों से रुपया उधार लेता है, और कुछ ?"

आज जो कुछ हम देख रहे हैं—लगता है, कठिनाइयों के बीच आचार्य द्विवेदी जी ने जिन अंकुरों को जन्म दिया था, वही अब वृक्ष बन गये हैं। उनमें पल्लव और पुष्प ही नहीं, फल भी लगने लगे हैं।

• • •

भुजंग-भूषण भट्टाचार्य !

❖

आचार्य द्विवेदी जी के साथियों से यह बात छिपी नहीं है कि हिन्दी में 'कथा-साहित्य' की नींव डालने के लिए उन्होंने अपना जो उपनाम रक्खा वह था—"भुजंग-भूषण भट्टाचार्य" ! इस अनोखे उपनाम में कौन-सा रहस्य छिपा था,—यह बात 'सरस्वती' के पाठकों की समझ में तब भले हो न आई हो; किन्तु सरपंच होने के बाद सरकार एवं पंचायत-अधिकारियों को इसका वास्तविक अर्थ समझने में कठिनाई न पड़ी होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। 'भुजंग-भूषण'—शिवजी—को अपना प्रतीक बनाने वाले आचार्य द्विवेदी जी जिस विभाग में पहुँचे, वहीं 'रुद्र' बन गये। परम्पराओं का संहार करने के लिए उन्होंने विधान की कुछ धाराओं को चुनौती दी। उसमें संशोधन कराया। उनके सुझावों को मानने के लिए ब्रिटिश सरकार को विवश होना पड़ा। आचार्य जी केवल सर्वांग सुधारक ही नहीं, अनन्य सेवक भी थे। चाहे समाज-सुधार की बात हो, चाहे लिपि-सुधार का प्रश्न; टेलीग्राफी-व्यवस्था में सुधार करने का सुझाव हो, अथवा पंचायत एक्ट में संशोधन का प्रस्ताव; हर विषय पर उनका सुधारवादी दृष्टिकोण मुखर हुआ। जीवन के प्रत्येक पथ पर वह नवनिर्माण

का संदेश सुनाते हुए बढ़े। यही कारण है कि जहाँ उन्हें अव्यवस्था दिखाई पड़ी, वहीं उन्होंने परम्परा बदली। जहाँ कानून में जनता का अहित देखा, वहीं उसे जन-कल्याणकारी बनाने के लिए अपने विचार व्यक्त किये। यह सभी जानते हैं कि आचार्य द्विवेदी जी कोई मिनिस्टर नहीं थे, विधायक भी न थे। हिन्दी साहित्य के लिए वह भले ही भीष्म-पितामह रहे हों, किन्तु ग्रामवासियों के लिए 'सरपंच' से अधिक कुछ न थे। एक सरपंच की हैसियत से उन्होंने अपने विचारों, सुझावों, एवं संशोधनों को मूर्तिमान किया, यह उनकी महानता नहीं, कर्मठता थी। यही कारण है कि वह ग्रामीणों के लिए जहाँ 'भोले बाबा' थे; वहीं अधिकारियों के लिए 'भुजंग-भूषण !'

यह सभी जानते हैं कि बम्बई में तार का काम सीखने के पश्चात् उन्हें २५ रु० मासिक की नौकरी मिली थी। धीरे-धीरे जब वह अपने कार्य में दक्ष हो गये, तब उन्होंने टेलीग्राफी पर एक पुस्तक लिखी। पुस्तक ने अधिकारियों की आँख खोल दी। एक सर्वथा नवीन सुझाव सामने आया। उन की इस कृति का सम्मान हुआ। उसी के अनुसार टेलीग्राफी में संशोधन किया गया। इसके पश्चात् जब उन्होंने डिस्ट्रिक्ट-सुपरिन्टेन्डेन्ट के कार्यालय से त्याग-पत्र दिया और 'सरस्वती' का संपादन सँभाला, तब उनका नया सुधारवादी चेहरा सामने आया। इसके पूर्व 'सरस्वती' का संपादन बाबू श्यामसुन्दरदास जी किया करते थे। संपादक होते ही द्विवेदी जी की सुधारवादी मनोवृत्ति ने

'कलम-कुल्हाड़ा' उठाया। लेखकों को सचेत किया—"देखिये, लेने के अर्थ में जब 'लिये' शब्द आता है, तब 'यकार' से लिखा जाता है। जब विभक्ति के रूप में आता है, तब 'एकार' से लिखा जाता है। जो शब्द एकवचन में 'यकारान्त' रहते हैं, वे बहुवचन में भी यकारान्त रहेंगे। जैसे—किया, किये, गया, गये। परन्तु स्त्रीलिंग में 'गयी' न लिख कर 'ईकार' से 'गई' लिखा जाता है...।" इस प्रकार देवनागरी लिपि में संशोधन के बाद अब नम्बर था 'पंचायत ऐक्ट' का।

उन दिनों यह व्यवस्था थी कि पंचायत के कार्य का वार्षिक विवरण जिला अधिकारियों को भेजा जाता था। विवरण प्रेषित करने के लिए एक निश्चित रूप-पत्र था। इसी रूप-पत्र पर वार्षिक कार्य-विवरण अंकित किया जाता था। पंचायत का कार्यवर्ष समाप्त हुआ। आचार्य द्विवेदी जी ने निर्धारित रूप-पत्र पर वार्षिक विवरण तहसीलदार, डलमऊ के पास भेज दिया। लेकिन उसके सभी कालमों को वह भर न सके। जो कालम भरने से रह गये उनका शीर्षक था—"बाकी" और "बकाया।" ये दोनों शब्द आचार्य द्विवेदी जी के लिए एक रहस्य बन गये। उन्होंने रूप-पत्र के साथ तहसीलदार को एक व्यक्तिगत पत्र लिखकर उक्त दोनों शब्दों का स्पष्टीकरण माँगा। तहसीलदार ने अपने १७-१०-२६ के पत्र में उत्तर दिया—

"...मैं समझता हूँ कि इन दोनों कालमों में कोई कठिनाई नहीं है। 'बकाया' का अर्थ है—प्रारंभिक अवशेष (Opening

Balance) और 'बाकी' का अर्थ है—'अंतिम शेष' (Closing Balance)। यदि आप कार्यव्यस्त हैं तो आपको यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, कुछ समझना चाहें, तो आ सकते हैं। यों, मैंने अपने कर्मचारियों को चेतावनी दे दी है कि वे आप को व्यर्थ में कष्ट न दिया करें।''

तहसीलदार, डलमऊ का स्पष्टीकरण आचार्य जी को प्राप्त हुआ। वास्तव में वह अपने स्वभाव के अनुसार अधिकारियों से मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते थे। कोई आवश्यकता होती तो पत्र द्वारा सूचित कर देते। पंचायत के कार्य से यदि उन्हें जाना पड़ता तो अत्यधिक कष्ट होता। तहसीलदार ने अपने पत्र में यही संकेत किया था कि आप को यहाँ बुलाकर व्यर्थ में कष्ट न दिया जाया करेगा। तहसीलदार के पत्र से एक बात का तो स्पष्टीकरण हो गया किन्तु रूप-पत्र अभी बाकी था। उस का स्पष्टीकरण उनकी समझ में नहीं आया। तहसीलदार ने सहज भाव से दोनों शब्दों का अर्थ लिखकर भेज दिया था। उन्हें स्वप्न में भी आशा न थी कि द्विवेदी जी बाल की खाल निकालेंगे। प्रश्नोत्तर पाते ही द्विवेदी जी ने प्रहार किया—

''...कृपा के लिए कोटि-कोटि धन्यवाद। मैंने अधिकारियों के पास इसे इसलिए भेजा था कि वे निश्चित करें, अन्यथा मैं अपने कार्य को समझ न पाऊँगा। आपका यह नोट कि 'बाकी' मानी मुकद्दमों का अन्तिम अवशेष तथा 'बकाया' मानी प्रारम्भिक

अवशेष मेरी समझ में नहीं आ रहा। मैंने T. Craven की डिक्शनरी में देखा है। वह इस प्रकार है—

बाकी—Remmant, Balance, Arrears.

बकाया—(Not-Baqua) Remander, Balance.

आप ही बताइये कि वह ठीक है, या यह।

इसके पश्चात् तहसीलदार ने कोई उत्तर दिया अथवा नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता। हाँ, द्विवेदी जी अपने संशोधन के अनुसार ही रूप-पत्र भरते, भेजते रहे।

उसी समय एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। इस घटना से पूरे प्रान्त के अधिकारी, सरकार और विधायक चौंक पड़े। द्विवेदी जी ने 'पंचायत-ऐक्ट' की कुछ त्रुटियों की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। उसमें उन्होंने गवर्नर से उचित संशोधन करने एवं अध्यादेश निकालने की माँग की। इस माँग का कारण यह था कि पंचायत-सीमा के बाहर पड़नेवाले ग्राम-वासी, अन्य पंचायतों के अधिकार-क्षेत्र में जा कर अपराध करते थे। पंचायत इन्हें दंड देने में असमर्थ हो जाती थी। ऐसा प्रायः प्रतिदिन हुआ करता था। ऐक्ट में इसकी कोई व्यवस्था न थी। उदाहरणार्थ—दौलतपुर ग्राम पंचायत-क्षेत्र में अन्य पंचायत क्षेत्रों के पशु आकर हानि पहुंचाते थे। खेतों की फसल खा जाते थे। पशुओं के स्वामी पर पंचायत की अधिकार-सीमा के बाहर रहने के कारण सीधे कोई कार्यवाही नहीं हो पाती थी। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि पंचायत-क्षेत्र दौलतपुर

का व्यक्ति पंचायत की सीमा के बाहर रहनेवाले व्यक्ति पर मुकद्दमा दायर करता था। बाहर का व्यक्ति पंचायत के बुलाने पर आता न था अथवा समन लेने से इन्कार कर देता था। ऐसी दशा में एक विशेष वैधानिक कठिनाई उत्पन्न हो जाती थी। पंचायत-ऐक्ट में इस प्रकार की कोई व्यवस्था न थी। आचार्य जी ने विवश होकर जिला-अधिकारियों का ध्यान इस ओर आर्कषित किया। इस पर परगनाधीश डलमऊ ने दिनांक ६-१०-३१ को अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा—

"....आपके २८ अक्तूबर के पत्र के संदर्भ में मुझे सूचित करना है कि आप नियमानुसार समनों की प्रतियाँ जिलाधीश, रायबरेली के पास भेज सकते हैं। आपके पत्र के छठे पैराग्राफ में पंचायत-सीमा के बाहर के जिन ग्रामों का उल्लेख है, उन्हें मैं अपने आगामी शिविर में देखूँगा। इस संबंध में पंचायत-ऐक्ट की जिन त्रुटियों की ओर आपने संकेत किया है, उन पर मैंने गम्भीरतापूर्वक विचार कर लिया है। मेरी राय से, जब ऐक्ट में पुनर्विचार हो तब अधिक अच्छा हो कि आप सरकार के पास सुझाव भेजें।"

परगनाधीश के सुझाव पर आचार्य द्विवेदी जी ने पंचायत ऐक्ट की त्रुटियों की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। कुछ पत्रों की कटिङ्ग से पता चलता है कि उन्होंने गवर्नर तथा तत्कालीन विधायकों का भी ध्यान इस ओर खींचा। फलस्वरूप सरकार ने द्विवेदी जी का संशोधन स्वीकार कर लिया। पंचायत दौलतपुर को विशेष आज्ञा प्रदान की गई कि उक्त

पंचायत अन्तरिम काल में अपनी अधिकार-सीमा के बाहर समन तामील कर सकती है, तथा अभियुक्त को पंचायत में तलब कर उसे दंड दे सकती है। राज्य सरकार की ओर से आचार्य जी के पास जो सूचना भेजी गई वह यह थी—

"संयुक्त प्रदेश के ग्राम पंचायत ऐक्ट १९२९ (भाग ६, १९२०) की धारा २४ के संबंध में गवर्नर एवं कार्यकारी मंत्री ने रायबरेली जिले की, तहसील डलमऊ की ग्राम पंचायत दौलतपुर को अधिकार दे दिया है कि वह उक्त धारा में अभिलिखित अधिकारों का अंतरिम उपयोग करे।"

उक्त आदेश की प्रति आचार्य जी के पास भेज दी गई। उनका सुझाव सफल हुआ। बाद में पंचायत ऐक्ट में भी संशोधन हो गया। इस राजकीय आदेश से आचार्य द्विवेदी जी ही नहीं, पंचायत दौलतपुर भी गौरवान्वित हो गई। उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई। गवर्नर से लेकर जिला-अधिकारी तक पंचायत को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। दौलतपुर की पंचायत की कीर्ति प्रान्त-व्यापी हो गई।

इस प्रकार 'भुजंगभूषण भट्टाचार्य' जहाँ पंचायत ऐक्ट एवं अधिकारियों के लिए 'रुद्र' बने वहीं जनहित के दृष्टिकोण से वह 'शिव' के रूप में कल्याणकारी भी सिद्ध हुए। जन-जीवन के लिए जहाँ उन्होंने परम्परा से टक्कर ली, वहीं उन्होंने वैधानिक व्यवस्था को भी नया मोड़ दिया। आचार्य जी ने सागर की गहराई की चिन्ता न करते हुए जहाँ भी गोता लगाया, वहीं से मोती खींच लाये। वह वास्तव में भाग्य-पुत्र थे। ●●●

अभियोग, अनुपस्थिति और सिफ़ारिश

युग बदला, समय बदला और समय के साथ-साथ संविधान भी बदल गया। जनता के मौलिक अधिकार बढ़ गये; लेकिन मनोवृत्ति नहीं बदली। ग्राम्य-जीवन एवं पंचायतों की जो झाँकी आचार्य द्विवेदी जी ने देखी थी, उसका रूप आज तक वैसा ही चला आता है। कहीं-कहीं तो अकर्मण्यता से यह रूप विकृत होकर घिनौना हो गया है। जिन्होंने अपनी आँखों से आचार्य द्विवेदी जी की पञ्चायत का रूप देखा है वे लोग आज की पञ्चायतों की कार्य-प्रणाली को कोसते रहते हैं। जिन्होंने द्विवेदी जी के मुख से स्व० पढ़ीस कृत 'चकल्लस' की व्यंग्योक्तियाँ सुनी हैं वे आज समय के कठमुल्लेपन पर दुःखी हो जाते हैं; क्योंकि मानव-संस्कारों का परिष्कार अब तक नहीं हो पाया।

ग्राम-पंचायत दौलतपुर को अपनी अधिकार-सीमा के अंतर्गत माल तथा फौजदारी दोनों प्रकार के मुकद्दमे करने का अधिकार था। यह अधिकार सीमित होते हुए भी द्विवेदी जी के व्यक्तित्व से व्यापक बन गया था। उस समय की पंचायत में केवल यह अंतर था कि सभी पंच सरकार द्वारा मनो-

नीत होते थे। वे न तो जनता द्वारा चुने जाते थे और न उनकी कोई बेंच ही निर्धारित की जाती थी। हाँ, यदि किसी पंच के विरुद्ध शिकायत आती थी तो वह बैठक में भाग नहीं लेता था। पंचायत के सभी सदस्य बैठक में भाग लेते थे।

आचार्य द्विवेदी जी के पास जो मुकदमा विचारार्थ आता, और वह पंचायत की अधिकार-सीमा के अंतर्गत होता, तो वह उसे अवश्य स्वीकार कर लेते। पंचायत में प्रार्थना-पत्र देने की प्रणाली थी। यह प्रणाली उस समय अधिक दुखदाई सिद्ध हुई, क्योंकि गाँवों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार न था। वहाँ मुंशी तथा वकीलों का भी अभाव था। ऐसी स्थिति में कभी-कभी यह हो जाता था कि मुकदमा दायर करनेवाले व्यक्ति की सही अभि-व्यक्ति, प्रार्थना-पत्र लिखनेवाला व्यक्त नहीं कर पाता था। परिणामस्वरूप वैधानिक दृष्टिकोण से घटनाक्रम ही बदल जाता था। ऐसी स्थिति में अभियुक्त इसका दोष पंचायत अथवा द्विवेदी जी के मत्थे मढ़ देता था।

आचार्य जी कर्मठ व्यक्ति थे। उन्हें कभी भी इस प्रकार के अपवादों की चिन्ता नहीं रहती थी। वह प्रार्थना-पत्र स्वीकार करने के पश्चात् सूचना-पत्र निकालते। मुकद्दमे की सुनवाई की सूचना वादी-प्रतिवादी दोनों को देते। कभी-कभी सूचना-पत्र में ही इस बात का उल्लेख कर देते कि अमुक व्यक्ति ने, अमुक व्यक्ति के ऊपर अमुक धारा के अन्तर्गत मुकदमा दायर किया है; अतः सभी पंचों का उपस्थित रहना अनिवार्य है। किन्तु

ऐसा वह कभी-कभी ही करते थे। अधिकतर केवल बैठक को ही सूचना देते थे। कभी-कभी यह भी होता था कि पञ्चायत के सात-आठ पञ्चों में केवल दो-तीन ही उपस्थित हो पाते थे। गणपूर्ति के अभाव में वादी-प्रतिवादी आते और लौट जाते। द्विवेदी जी पंचों की इस लापरवाही पर खीझ कर रह जाते। इस प्रकार के अवसर पंचायत में अनेक बार आ चुके थे। एक बार तो यहाँ तक हुआ कि सूचना-पत्र पर केवल एक ही पंच उपस्थित हुआ। शेष सभी पंच घर में बैठे रहे। द्विवेदी जी ने इस पर भुंझला कर लिखा—

"पञ्चान, पंचायत दौलतपुर,

आज एक मुकदमे की पेशी थी। मगर सिवा चंद्रपाल के और कोई हाजिर नहीं। अगर यही हालत रही तो काम कैसे चलेगा ? फरीकैन आते हैं और लौट जाते हैं। यह अफसोस की बात है। अब आप लोग २६ दिसम्बर, सोमवार को जरूर पञ्चायत में पधारिये।"

(ह०) म० प्र० द्विवेदी

२३-१२-२७

इस प्रकार की व्यावहारिक कठिनाइयाँ आचार्य जी के समक्ष पड़ा करती थीं। इसका मूल कारण था पञ्चों का अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक न रहना अथवा उनमें कर्तव्य-पालन की भावना का अभाव। आज भी पंचायतों के समक्ष ऐसी कठिनाइयों का पड़ना स्वाभाविक है।

आचार्य द्विवेदी जी के समक्ष कभी-कभी यह भी समस्या आ जाती थी कि संबंधित मुकदमे के पक्ष-विपक्ष दोनों अथवा एक गायब रहता था। नियमानुसार वह वादी, प्रतिवादी में किसी एक के न रहने पर सुनवाई करते थे अथवा 'अदम पैरवी' में उसे खारिज कर दिया करते थे। यह सही है कि इस प्रकार के बहुत कम अवसर आये हैं; फिर भी इन अवसरों का अभाव रहा हो, ऐसी बात न थी। जहाँ तक हो सकता, लोग अपनी अनुपस्थिति की सूचना पंचायत को दे दिया करते थे। कोई लिखता—"आज आपकी इजलास सें हमारी तलबी है और आज ही हमको लड़की की शादी के विषय में फलदान भेजना है। हमारी तबीयत अच्छी भी नहीं रहती। इस वक्त लड़की की शादी की वजह से ज्यादा मजबूरी है। आबरू का मामला है। अतः हमारी गैरहाजिरी माफ की जाय!"

दूसरा लिखता—"पंडित जी को चरन छूना पहुँचै। हमारी पेशी की तारीख अगले सोमवार तक बढ़ा दी जाय। क्योंकि हमारे यहाँ 'शीतला-देवी' (चेचक) हैं। शनिवार को पूजा होगी। इस कारण हाजिर होने से मजबूर हूँ। बाबू जी! मेरी इस विनती को स्वीकार करने की कृपा कीजिये!"

तीसरा मुकदमेबाज प्रार्थना करता—"आगे हाल यह है कि बरैली (रायबरेली) से आकर लालगंज में ठहर गया हूँ। इस वजह से पंचायत में हाजिर नहीं हो सकता। कसूर माफ करना।"

कहने का तात्पर्य यह कि अपनी अनुपस्थिति के भाँति-भाँति के बहाने लोग लिख-लिख भेजते। क्षमा-याचना करते। द्विवेदी जी अनुपस्थिति के कारणों को दृष्टिगत करके तिथि बढ़ा देते, या उसे अस्वीकृत कर देते। कभी-कभी ऐसा भी होता कि यदि कोई पक्ष अनुपस्थित रहता और 'अदम-पैरवीं' में मुकदमा खारिज कर दिया जाता तो वह 'पुर्नविचार' के लिए प्रार्थना-पत्र देता। तब पंचायत उसे स्वीकार कर पुनः विचार करती। एक बार एक व्यक्ति ने बड़ा मजेदार पत्र 'अदम-पैरवी' में खारिज मुकद्दमे के संबंध में लिखा :—

> "श्रीमान पं० जी को सादर चरन छूना स्वीकार हो।
>
> आगे हाल यह है कि पानी की वजह से तारीख १०, दिन सोमवार को मुझे टैम (समय) नहीं मालूम हो सकी। इससे देर हो गई। सो फिर से मेरा मुकद्दमा लिया जाय !"

द्विवेदीजी ने उसका मुकदमा पुनः स्वीकार कर लिया। आज भी न्याय-पंचायतों में 'अदम-पैरवी' में खारिज मुकदमों को पुनः स्वीकार करने का अधिकार है। किसी मुकदमे में, जो सम्मानित न्यायालय में चल रहा हो, हस्तक्षेप करना अथवा निर्णायक पर नाजायज प्रभाव डालना, जिसका असर मुकद्दमे में पड़े, वैधानिक दृष्टिकोण से अदालत की 'मानहानि' के अंतर्गत आता है। किंतु भोले-भाले ग्रामीणों को इसकी जानकारी न थी। वे द्विवेदी जी को 'घर का आदमी' समझ कर मुकदमों में प्रायः हस्तक्षेप कर दिया करते थे। कभी-कभी पैर पकड़ कर रोने लगते। सिफारिशें लाते। आचार्य जी सिफारिशी पत्र पाते और उसे पढ़ कर

फाइल में लगा देते। एक बार नीबी ग्राम के एक सज्जन श्री प्रयाग नारायण ने एक मुकद्दमे को सिफारश करते हुए आचार्य जी को लिखा—

"श्रीयुत, मान्यवर, पं० जी महोदय,

प्रणाम !

मैं आशा करता हूँ कि आप इस मामले में सुलह करा देंगे। और भाई चंदिका प्रसाद, नीबी भी इसे मंजूर करेंगे। क्योंकि ये सुनार उन्हीं के बसाये हुए हैं। एक बार इनकी नालायकी व कसूर माफ करना चाहिए। यह गरीब आदमी हैं। यदि कोई कसूर हो गया हो तो माफ किया जाय। बड़ों को छोटों पर क्षमा करना चाहिये।"

आपका शुभचिंतक

प्रयाग नारायण

द्विवेदी जी को यह पत्र जब मुकदमे के दौरान मिला, तब उन्होंने इस पर कुछ भी नहीं लिखा। केवल हस्ताक्षर करके उसे 'सीन' फाइल कर दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य जी किसी भी मामले का वैधानिक रूप नष्ट नहीं होने देते थे। उचित निर्णय, निष्पक्ष न्याय, अपने अधिकारों का सही प्रयोग, उनकी विशेषता थी। इसके कारण दौलतपुर तथा उसके आस-पास उनके अनेक विरोधी हो गये किन्तु वे अपने पथ से कभी विचलित नहीं हुए। एक सरपंच के नाते, उनका जो कर्तव्य था, उसे निष्ठापूर्वक करते रहे।

ये नाबदान : ये गन्दी गलियाँ !

कविताएँ लिखने से गाँव साफ नहीं हो सकता ।

तो फिर ? क्या पंचायत राज ऐक्ट का सहारा लूँ ?

ऐक्ट भी गाँव की सफाई नहीं कर सकता । इसके लिए तो रचनात्मक कदम उठाने की आवश्यकता है । लेख, कविताएँ, व्याख्यान और यह ऐक्ट गाँव में झाड़ू नहीं लगा सकते । इन नाबदानों में पता नहीं कितने व्याख्यान बह गये । लेख और कविताएँ नालियों में सड़ गईं । ऐक्ट और कानून कूड़ा-करकट के ढेर में समा गये । पर, गाँव न स्वच्छ हुए । अभिशाप न मिटा, कलंक और ताजा हो गया ।

आचार्य जी अपने गाँव की गंदगी से ऊब उठे थे । जो चाहता, रास्ते में कूड़ा फेंक देता । मकान के पास घूरा लगा देता, गंदी नालियों को गलियों में मिला देता । यह दशा दौलतपुर ग्राम की ही नहीं, भारत के प्रायः सभी गाँवों की है । कौन-सा गाँव ऐसा होगा, जहाँ कूड़ा-करकट न पड़ा हो । घूरा न लगाया जाता हो । नाबदानों का गंदा पानी गलियों-गलियारों तक न पहुँचता हो । इस गंदगी का प्रभाव ग्रामवासियों

के जीवन पर क्या पड़ता है ? इस पर कितने पंचों, सरपंचों, सभापतियों का ध्यान गया है ? यह अलग का प्रश्न है। मौलिक समस्या तो यह है कि हम इसके लिए क्या करें ? तत्कालीन पंचायत राज ऐक्ट में यह व्यवस्था थी—"लोग घरों के निकट कूड़े-करकट के ढेर न लगायें, घूरा न इकट्ठा करें, नाबदानों का गंदा पानी जनमार्ग पर न जाने पाये।" कानून की व्यवस्था होते हुए भी यह सब होता रहा। बीमारियाँ बढ़ती रहीं और बीमारी से अधमरे ग्रामवासी एक पुड़िया कुनैन के लिए तरसते रहे। द्विवेदी जी से यह देखा न गया। वे इसके लिए कविताएँ लिख चुके थे, व्याख्यान दे चुके थे, कानून समझा चुके थे। अब केवल एक ही रास्ता शेष था—कठोरता से कदम उठाना।

उस समय यह अधिकार सरपंच को ही था। द्विवेदी जी ने सरपंच होने के नाते गाँव की सफाई को प्राथमिकता दी। उस ओर सक्रिय कदम उठा कर अपने अधिकारों का प्रयोग किया। ग्राम-जीवन को स्वर्ग बनाने के लिए, स्वच्छता की ओर देश के जिन महापुरुषों के चरण बढ़े, उनमें द्विवेदी जी का नाम सम्मान के साथ लिया जायगा। यों, उनके समक्ष स्वच्छता से संबंधित अनेक मामले आये और बिना किसी प्रकार की चिंता के उन्होंने उन्हें कार्यान्वित किया। उनमें से केवल तीन मामले मैं उद्धृत कर रहा हूँ।

सर्वप्रथम इस का श्रीगणेश उन्होंने अपने ही घर से किया। तत्पश्चात् गाँव का नम्बर आया। २८ दिसम्बर १९३० को उन्हें इकबाल बहादुर श्रीवास्तव का एक प्रार्थना-पत्र मिला, जो इस प्रकार था—

दौलतपुर

३०-१२-३०

श्रीमान् सरपंच साहब की सेवा में निवेदन है कि हमारे दरवाजे पर विद्याधर मिश्र, रामबिहारी पांडे के नाबदान का गंदा पानी, व दुर्गादत्त मिश्र के कुएं का पानी बहता है। जिससे आने-जाने में बड़ा कष्ट पहुँचता है। आशा करता हूँ कि पंचायत इसका उचित फैसला करेगी।

आपका

इकबाल बहादुर श्रीवास्तव

प्रार्थना-पत्र पर पंचायत दौलतपुर ने विचार किया तथा मामले को पंचायत की कार्यवाही-पुस्तिका में अंकित कर लिया। बाद में पंचों ने मौके का निरीक्षण किया। आरोप सही निकले। दूसरे दिन तीनों प्रतिवादियों को अलग-अलग नोटिसें दी गईं। जिनमें से एक नोटिस इस प्रकार थी। नोटिस पर सरपंच द्विवेदी जी के हस्ताक्षर थे। वह उन्हीं की हस्तलिपि में भी थी—

नोटिस
बनाम विद्याधर मिश्र
सा० दौलतपुर।

इकबाल बहादुर श्रीवास्तव की दरख्वास्त पर, कल पंचों ने आपके और व्रजमोहन मिश्र की बेवा के नाबदानों की हौदियों का मुलाहजा किया। वे भरी हुई पाई गईं। अपनी हौदी फौरन साफ कीजिए।

अन्दर एक हफ्ते के आप अपने परनाले, याते नाबदान के नाली से नल, रास्ते की तरफ तिरछे हटा कर पाँच-हाथ दूर अपनी हौदी गाड़ें और उसे साफ रक्खा करें। अभी आपकी हौदी, मुसम्मात की हौदी के बिल्कुल पास है। इस वजह से इसका पानी उसमें, और उसका इसमें आ सकता है। कोई एक आदमी ठीक-ठीक जिम्मेदार नहीं कहा जा सकता। यह न होना चाहिए।

म० प्र० द्विवेदी

सरपंच

तीनों प्रतिवादियों पर नोटिसें तामील की गईं। सबों ने मिलकर दो-दिन पश्चात् अर्थात् २-१-३१ को, संयुक्त रूप से, एक प्रार्थना-पत्र दिया। प्रार्थना-पत्र में श्री इकबाल बहादुर श्रीवास्तव की आपत्ति के संदर्भ में निवेदन किया कि— "तीनों मोहरी तक नाली किसी वजह से अथर गई है।

मगर नीचे पोख्ता बनी है। जब तक इसकी मरम्मत नहीं कर सकते, उस वक्त तक 'नाँदी' हम लोग हिफाजत से रक्खेंगे और नाँदी (नाबदान की हौदी) के बाहर पानी न जाने पायेगा। पूरा इंतजाम रहेगा।" अंत में उन्होंने यह भी निवेदन किया कि—"कुआँ, दुर्गादत्त मिश्र के और हम लोगन की मोहरी तक नाली पोख्ता मरम्मत करने की दो माह तक की मोहलत दी जाय।"

इस संयुक्त प्रार्थना-पत्र पर, पंचायत दौलतपुर ने ८-१-३१ को पुनः विचार किया। दो मास की अवधि प्रार्थियों को 'नाली पुख्ता' करने के लिए मिल गई। कहना न होगा कि दो-मास के अंतर्गत ही नाली पक्की बन गई और गंदगी दूर हो गई।

[२]

दूसरा प्रार्थना-पत्र सरपंच दौलतपुर को मिला—सुअरों से संबंधित !

गाँवों में गंदगी के कारणों में 'सुअर' जैसे गंदे जानवरों का बस्ती के भीतर इधर-उधर घूमना तथा गाँव के निकट ही 'सुअर बाड़े' का प्रबंध होता है। यह पशु उत्तर भारत के प्रायः सभी ग्रामों में पाया जाता है और हरिजन जातियों के कुछ लोग यथा—चमार, पासी, डोम आदि इसे पालते हैं। जिस स्थान पर इसका 'बाड़ा' होता है उस स्थान तथा उसके

आस-पास का वातावरण बहुत ही दूषित रहता है। दुर्गन्धि वायु में मिलकर पूरे वातावरण को दूषित बना देती है। बहुधा यह 'बाड़ा' गाँव से अलग बनाया जाता है; किन्तु कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि स्थानाभाव के कारण इन्हें पालनेवाले अपने घर के ही एक भाग को बाड़े का रूप दे देते हैं। ऐसी दशा में पास-पड़ोसवालों को तो कष्ट रहता ही है, कभी-कभी उस समय बड़ी ही कठिनाई पड़ जाती है जब सुअरों के झुण्ड अपने बाड़े से निकल कर घरों एवं दरवाजों में घुस जाते हैं। ऐसी घटनाएँ प्रत्येक ग्राम में प्रायः होती ही रहती हैं। यदि दुर्भाग्य से गाँव बीस-बिस्वावाले ब्राह्मणों का हुआ तब तो इनके पालनेवालों की मुसीबत ही है।

दिनांक २५-१०-३० की बात है। दौलतपुर में इसी प्रकार की घटना हो गई। गाँव के सर्वश्री ताराचरण मिश्र, जगदीश प्रसाद शुक्ल एवं शिवगोविन्द शुक्ल ने एक प्रार्थना-पत्र द्विवेदी जी को दिया। प्रार्थना-पत्र बहुत ही मनोरंजक था। उसे अविकल रूप से उद्धृत कर रहा हूँ।

श्रीमान् सरपंच साहब,
दौलतपुर को प्रणाम !

आगे हम लोगों को निहायत तकलीफ हो रही है। कई बार कहा गया मगर 'दुर्जन पासी' कुछ नहीं सुनता। अपनी 'सोरियों' (सुअरों) से हम लोगों का दरवाजा और खेतों को

बड़ा नुकसान पहुंचा रहा है। सोरी दरवाजे पर आकर हगती हैं। जानवरों के गेराँय छू लेती हैं। यहाँ तक कि मैला लग जाता है। दरवाजे पर रक्खा हुआ बर्तन छू लेती हैं। दरवाजे पर पड़ी हुई लकड़ी भ्रष्ट कर डालती हैं। कोई उनके पीछे ताकने वाला नहीं रहता। खेतों में घुसकर नुकसान करती हैं। सो सुना जाय। वह अपनी सोरियों का इन्तजाम करे। और दंड दिया जाय। मैं दावा करने का पैसा जमा करता हूँ।

(द०) ताराचरन मिश्र बः खुः

जगदीश प्रसाद शुक्ल बः खुः

शिवगोविन्द शुक्ल बः खुः

यह मामला पशुओं के अनधिकार प्रवेश ऐक्ट नं० १ सन् १८७१ के अन्तर्गत आता था। तत्कालीन पंचायत राज ऐक्ट की धारा २४ एवं २६ में भी इसकी व्यवस्था थी। आचार्य जी को जब यह प्रार्थना-पत्र मिला तब उन्होंने पंचायत की बैठक बुलाई। मामले की छान-बीन हुई। बात सत्य निकली। पंचायत ने दुर्जन पर जुर्माना कर दिया। दुर्जन गिड़गिड़ाया। द्विवेदी जी को तरस आ गया। उन्होंने अपने पास से पैसा देकर उसे गाँव के बाहर 'सुअर बाड़ा' बनाने का आदेश दिया।

[३]

अक्तूबर १९३१ की बात है। श्री भगवतीप्रसाद मिश्र ने एक प्रार्थना-पत्र जिलाधीश रायबरेली के पास अवधविहारी

पुत्र श्री केवल राम मिश्र के विरुद्ध गाँव में गन्दगी फैलाने से संबंधित भेजा। श्री अवधविहारी मिश्र गाँव के प्रभावशाली व्यक्तियों में से थे। प्रार्थी ने सोचा, इतने प्रतिष्ठित एवं महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का पंचायत क्या बना-बिगाड़ सकती है। अतः उसने सीधे जिलाधीश से ही न्याय की प्रार्थना की। प्रार्थना-पत्र में मुख्य पाँच आरोप थे :—

(१) फिदवी के पड़ोस में मुसम्मे अवधविहारी पुत्र केवलराम मिश्र का मकान है। पेशा महाजनी है। उनकी खिड़की एवं प्रार्थी के मकान का निकास एक है।

(२) अवधविहारी मौसूफ उस खिड़की के निकास का सहन बिल्कुल गंदी हालत में रखने के अलावा उस खिड़की को आमद-रफ्त की दालान में साल-हा-साल खाद का ढेर बनाये हुए हैं। वह खाद (घूरा) फसल पर ही खेतों में ले जाता है।

(३) आलीजाह उस खाद से फिदवी के दरवाजे व मकान में गन्दगी इस कदर हवा के रुख से भरी रहती है जिससे सख्त तकलीफ रहा करती है।

(४) वक्तन-फवक्तन उस गंदगी का असर और-और लोगों पर भी पड़ता है। ज्यादहतर फिदवी को उससे तकलीफ रहती है। बीमारी फैलने का अंदेशा बना रहता है।

(५) अगर अवधविहारी मौसूफ से सफाई की निस्बत अर्ज करता हूँ तो आमादा लड़ाई होते हैं। फिदवी बहुत तंग आकर हुजूरे-वाला से बजरिये दरख्वास्त के अरज करता है कि इस तकलीफ को दूर करा देने का इंतजाम फरमाया जावे।''

प्रार्थना-पत्र में आक्षेपों की सत्यता की गुप्त जाँच की प्रार्थना भी की गयी थी। चूँकि यह प्रश्न पंचायत की अधिकार-सीमा के अंतर्गत आता था अतः जिलाधीश ने उसे सरपंच दौलतपुर के पास आवश्यक कार्यवाही हेतु भेज दिया। पंचायत ने अपनी बैठक में उक्त प्रार्थना-पत्र पर विचार किया। श्री अवधविहारी को घूरा हटाने एवं खिड़की को साफ करने की एक सप्ताह की नोटिस दी गई। नोटिस पाने पर श्री अवधविहारी पंचायत में हाजिर हुए। उन्होंने दिनांक २१-११-३१को लिखित बयान दिया—

"मैंने अपनी खिड़की का सहन और भीतर साफ कर दिया है। कहीं कूड़ा नहीं। आगे भी मैं हमेशा सफाई रक्खूँगा।

(द०) अवधविहारी

घूरे की सफाई हो गई। कूड़ा हट गया। गंदगी से दूषित वातावरण निर्मल हो गया। श्री भगवती प्रसाद को अब कोई शिकायत नहीं थी। उनकी रजामंदी पर द्विवेदी जी ने अंतिम आदेश लिखा—"सायल की रजामंदी से दरख्वास्त दाखिल दफ्तर की गई।''

कार्यवाही की सूचना जिलाधीश को भेज दी गई। ●●●

पंचायत में आत्माराम

'आत्माराम !'

यह एक नाम है। इसका परिचय देने की आवश्यकता नहीं। हिन्दी-साहित्य में "आत्माराम की टें ! टें !!" अपने समय की महत्त्वपूर्ण घटना है। स्मरण न हो तो पुरानी पत्रिकाओं की फाइलें देखिये। आचार्य द्विवेदी जी ने एक पुस्तक लिखी थी। नाम था—"कालिदास की निरंकुशता !" पुस्तक प्रकाशित होते ही हड़कम्प मच गया, क्योंकि द्विवेदी जी ने उक्त पुस्तक में आरंभ से उपसंहार तक अठारह परिच्छेदों में कालिदास की युक्तिपूर्ण आलोचना कर डाली थी। इस पुस्तक के उत्तर में 'निरंकुशता-निदर्शन' नामक कृति का प्रणयन किया गया। इसका उद्देश्य केवल द्विवेदी जी की पुस्तक में निहित तथ्यों का खंडन-मंडन था। इसके पश्चात् ही "आत्माराम की टें ! टें !!" सुनाई पड़ी। किन्तु आत्माराम, पूरे आत्माराम ही थे। वे अपनी गति से चलते गये। विवादों पर विवाद होते रहे। ये विवाद उन्हें पथ से विचलित न कर सके। वे उसी दृढ़ता और कठोरता से अनंत अंतरिक्ष में उड़ते रहे जिससे जीवन का समारंभ किया था। उड़ते-उड़ते वह इतनी ऊंचाई पर पहुँच

गये कि कोई छाँह तक न छू सका । जब धरती पर लौटे, तो संपाती की तरह पंख जला कर नहीं, मन में नव-निर्माण की नयी चेतना लेकर । लोगों ने आत्माराम का लोहा मान लिया । कठोरता मंगलमयी सिद्ध हुई । युग-निर्माण हुआ । इस युग को हम हिन्दी-साहित्य में 'द्विवेदी-युग' के नाम से पुकारते हैं ।

हिन्दी- साहित्य के साथ-साथ आत्माराम का प्रवेश पंचायत में हुआ । पंचायत के माध्यम से जन-जीवन को सुखी बनाना था । किन्तु यह कार्य तब तक पूरा नहीं हो सकता था जब तक पंचायत स्वयं रास्ते पर न आ जाय । सभी पञ्च अपने-अपने कर्तव्यों का पालन नहीं करते थे ! द्विवेदी जी ने पंचों के साथ भी कठोरता का व्यवहार किया। पहले तो पञ्च लोग भयभीत हुए । बाद में वे उसे 'आत्माराम की टें ! टें !!' ही समझने लगे । पंच अपनी आदत से बाज न आते, द्विवेदी जी उन्हें फटकारने से चूकते न थे । धीरे-धीरे पंचों का विवेक जगा । वे अपने उत्तरदायित्व के प्रति सजग हुए। परिणाम यह हुआ कि दौलतपुर की पञ्चायत प्रान्त की आदर्श पञ्चायत बन गई । पंचायत को यह रूप देने के लिए, द्विवेदी जी को पञ्चों को पथ पर लाने के लिए क्या-क्या करना पड़ा, इसकी झलक सूचना-पत्रों में मिलती है । खीझ कर, डाँट-डपट कर तथा चेतावनी देकर वह पंचों को बैठक में बुलाते थे । वे यह नहीं चाहते थे कि पञ्चायत की बैठक में कोई पञ्च अनुपस्थित रहे । पंच भी लापरवाह कम न थे । धीरे-धीरे उनकी आदतों में सुधार हुआ ।

इस सुधार के लिए द्विवेदी जी को जो कुछ करना पड़ा उसका रोचक इतिहास है।

१९२४ की बात है। आठ सितम्बर, सोमवार को पंचायत की बैठक थी। पंचों को बैठक की सूचना दी गई। उन्होंने सूचना-पत्र पर हस्ताक्षर भी कर दिये, पर कोई पंच बैठक में नहीं आया। सभी अपना-अपना घरेलू काम करते रहे। पंचों की अनुपस्थिति में कोरम पूरा न हो सका। कार्यवाही स्थगित कर दी गई। दूसरे दिन द्विवेदी जी ने पंचों को विवशता से पत्र लिखा—

"पं० शिवगोपाल मिश्र,
पं० विसेसर दुबे,
ठा० चन्द्रपाल सिंह,

कल सोमवार ८ सितम्बर को पंचायत की बैठक थी, इत्तिला देने पर भी आपलोग नहीं आये। इससे कुछ काम नहीं हो सका। अब शुक्रवार, १२ सितम्बर को फिर पंचायत होगी। मेहरबानी करके उस दिन २ बजे जरूर आइयेगा।

(ह०) म० प्र० द्विवेदी
सरपंच

दौलतपुर
९ सितम्बर १९२४

आचार्य जी ने उक्त पत्र लिख तो दिया; किन्तु उन्हें संदेह

बना ही रहा । अतः उक्त तीन पंचों में दो को उन्होंने स्वयं सूचना दी । तत्पश्चात् पंचायत की बैठक हुई । दो-चार बैठकें तो ठीक ढंग से चलीं, बाद में फिर वही स्थिति आ गई । पञ्च लापरवाही करने लगे । द्विवेदी जी ने समझा, अब इस प्रकार 'दया की भीख' माँगने से काम न चलेगा । उन्होंने सूचना-पत्रों की भाषा बदल दी । 'मेहरबानी' शब्द का प्रयोग, सूचना-पत्रों में फिर कभी दिखाई नहीं पड़ा । परिवर्तित भाषा में उन्होंने पंचों को इस प्रकार लिखना प्रारंभ किया—

पं० शिवगोपाल मिश्र

पं० व्रजभूषन वाजपेयी

पं० बद्री पांड़े

पं० बिसेसर दुवे

ठा० चन्द्रपाल सिंह

तहसील से एक चिट्ठी आई है । उसकी बाबत एक बहुत जरूरी काम के लिए आपसे सलाह लेनी है । लेहाजा, कल शुक्रवार २२ मई को सबेरे आप हाजिर आवें । आठ बजे तक अवश्य पहुँच जायँ । ताकीद समझें ।

(ह०) म० प्र० द्विवेदी

सरपंच

दौलतपुर

२१ मई १९२५

इस प्रकार की हिदायतोंवाले सूचना-पत्रों का व्यापक प्रभाव पड़ा। पञ्चों में कर्मठता आई। वे समय की पाबंदी करने लगे। यह क्रम १९३० तक भली भाँति चलता रहा। कार्य भी गतिशील हुआ। किन्तु पंच भी साधारण आदमी ही थे, महापुरुष नहीं। वे द्विवेदी जी की तरह यंत्रवत् कार्य भी नहीं कर सकते थे। उनमें पुनः शिथिलता आने लगी। द्विवेदी जी चिढ़ गये। एक बार तो पंचों की अनुपस्थिति से चार मुकद्दमे स्थगित करने पड़े। फिर क्या था? परशुराम का कलम-कुल्हाड़ा चल गया—

"पञ्चान, पंचायत दौलतपुर।

आज आप लोगों के न आने से चार मुकद्दमे मुल्तवी करने पड़े। कई आदमियों को तकलीफ हुई। इसका अफसोस है। ७ अप्रैल, सोमवार को २ बजे के पहले ही जरूर आइये। गफलत न हो।"

म० प्र० द्विवेदी

४ अप्रैल १९३० सरपंच

इस ताकीद पर सभी पञ्च आ गये। केवल श्री बद्री पांड़े जी नहीं पधारे। वह लगातार कई बैठकों में अनुपस्थित रहे। द्विवेदी जी सूचना-पत्र भेजते। पांड़े जी हस्ताक्षर करके उसे लौटा देते। किन्तु बैठक में न आते। द्विवेदी जी भी हिदायत देते-देते थक गये थे। अब उन्होंने मेहरबानी, हिदायत, ताकीद से अलग एक नया रास्ता अपनाया। 'इत्तिलानामा' में साफ-साफ लिखने लगे—"बद्री पांड़े को जरूर आना चाहिए।" यह

क्रम भी काफी समय तक चलता रहा। वे पंचों के नाम लिख-लिखकर उन्हें बुलाते रहे। पंचायत सुनियोजित ढंग से चलने लगी। तब से १९३७ तक पंचों ने ऐसा अपराध नहीं किया कि वे सूचना-पत्र पर न आवें। जो नहीं आये, उन्हें पंचायत छोड़कर भागना पड़ा।

सुनता हूँ, द्विवेदी जी के स्वभाव में एक विशेषता थी। वह यह कि किसी काम को वे तब तक नहीं छोड़ते थे जब तक वह सम्पन्न नहीं हो जाता था। अथ को उपसंहार तक वह अवश्य ले जाते थे। इसके लिए यदि कोई लापरवाही दिखाता तो वह लंबी खबर लेते थे। छोटे-छोटे कार्यों की उपेक्षा न वह करते थे और न करने वाले को क्षमा ही करते थे। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यहाँ द्विवेदी जी की कोई दुर्भावना नहीं रहती थी और न वे किसी 'व्यक्ति विशेष' का अहित ही चाहते थे। उनका लक्ष्य अभीष्ट कार्य की परिणति मात्र रहता था। इसकी लपेट में जो भी आ जाता, पिस उठता। एक बार किसी मुकदमे में कुछ व्यक्ति उपस्थित न हुए। इस पर द्विवेदी जी ने उनका "वारंट आफ अरेस्ट" निकलवाया। दुर्भाग्य से वह वारंट तामील न हो सका। अब क्या हो? सरपंच का आदेश! वारंट पुलिस द्वारा तामील कराने का हुक्म हुआ। वारंट का कागज सरेनी थाने भेजा गया और थानेदार को आदेश हुआ कि वह अविलम्ब इस पर कार्यवाही करें। थानेदार भी बद्री पांड़े से कम न थे। उन्होंने वारंट पर कोई ध्यान ही न दिया। वह थाने में ही पड़ा रहा। द्विवेदी जी

भी चूकनेवाले न थे। अब उनका लक्ष्य, अभियुक्त नहीं, वह थानेदार था जिसने वारंट की उपेक्षा की थी। सौभाग्य से उसी समय अर्थात् २१ जनवरी १९३१ को डिप्टी कलक्टर साहब थाना सरेनी का निरीक्षण करने पहुँचे। उनके वहाँ पहुँचते ही द्विवेदी जी का परवाना भी थाने पहुँच गया। थानेदार घबरा गया। एस० डी० ओ० ने तत्काल ही पुलिस भेजकर वारंट तामील कराया। दो अभियुक्त पकड़ कर पंचायत के सामने उपस्थित किये गये। एक डर कर भग गया। वह पंचायत के समक्ष नहीं आ सका। इस पर द्विवेदी जी ने परगनाधीश को पुनः लिखा—"......अभियुक्त नं० १ व २ आज पुलिस द्वारा गिरफ्तार करके पंचायत में लाये गये। नं० ३ नहीं आया। पुलिस को हिदायत दी जाय कि वह उसे गिरफ्तार करके मेरे समक्ष उपस्थित करे।"

आप मानें या न मानें, बात सत्य है। द्विवेदी जी ने तब तक संतोष की साँस नहीं ली, जब तक वह अभियुक्त हथकड़ी पहन कर पंचायत के सामने आ नहीं गया।

पंच, वादी-प्रतिवादी, अभियुक्त ही नहीं, सरकारी कर्मचारियों की भी वह शिकायत करने में नहीं चूकते थे। थोड़ी सी शिथिलता हुई कि द्विवेदी जी की रिपोर्ट उच्च अधिकारियों तक पहुँच गई। पंचायत में नियत चौकीदार की वह तब तक शिकायत करते रहे जब तक वह रास्ते पर नहीं आ गया। इसी प्रकार यदि पंचायत क्लर्क उनकी किसी रिपोर्ट का उत्तर

समय पर न देता अथवा असावधानी करता तो उसकी भी शिकायत जिला-अधिकारियों से कर देते कि क्लर्क की असावधानी से पंचायत के काम में हर्ज हो गया। उस रिपोर्ट पर भी कुछ न होता तो पंचायत के निरीक्षण के समय एक-एक बात नोट करा देते। एक बार की बात है। सरकारी आदेश में कुछ परिवर्तन हुआ। कुर्की वारंट की फीस बढ़ गई। द्विवेदी जी ने पंचायत क्लर्क को लिखा कि मेरे पास उस आदेश की प्रतिलिपि भेज दीजिये जिसके आधार पर फीस बढ़ाई गई है। पंचायत क्लर्क ने प्रतिलिपि भेजने में असावधानी दिखाई। द्विवेदी जी ने उसके पास स्मृति-पत्र भेजा। इस पर भी जब उसने ध्यान न दिया तो उन्होंने २४ फरवरी, १९३६ को परगनाधीश को बाध्य किया कि वे अपने निरीक्षण नोट में इस बात का उल्लेख कर दें। परगनाधीश ने विवश होकर निरीक्षण-पुस्तिका पर लिखा—"सरपंच ने मुझ से बताया कि उन्होंने उस नियम की प्रतिलिपि प्राप्त करने के लिए पंचायत-क्लर्क को कई बार लिखा जिसके अनुसार वारंट कुर्की की फीस १ रुपया ४ आना हो गई है। पंचायत-क्लर्क उस नियम अथवा आदेश की प्रति शीघ्र ही सरपंच के पास भेज दे।"

इसी प्रकार के अन्य बहुत से उदाहरण हैं जिनमें द्विवेदी जी ने पूरी शक्ति लगा दी थी। ऐसी शिकायतों एवं कार्यों के पीछे उनकी एक ही भावना निहित थी—"सभी लोग अपने-अपने उत्तरदायित्व का पालन करें, ऐसा करने से ही पंचायत

सुचारु-रूप से काम कर पायेगी।" यही भावना उनके 'आत्मा-राम' की वह भावना है जिसके पीछे हिन्दी-साहित्य में काफी विवाद हुआ था। आज 'आत्माराम' नहीं हैं, किन्तु उन्होंने जो-जो कार्य किये हैं वे युग-युग तक प्रेरणा देते रहेंगे। इसी आधार पर उन्होंने 'काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा' को अपनी 'थाती' ले जाने के लिए जो पत्र लिखा था उसमें स्पष्ट कर दिया था—"...मेरे समय की 'सरस्वती' की १७ वर्ष की हस्तलिखित कापियाँ मेरे पास हैं। किसी समय भविष्य में वे शायद मूल्यवान समझी जायँ। उनको देखने से पता लगेगा कि आज-कल के हिन्दी के अनेक धुरंधर लेखक किस तरह राह पर लाये गये हैं।..."

वास्तव में, द्विवेदी जी जो कुछ करते थे वह केवल राह पर लाने के लिए। उनका यह कार्य दिग्भ्रमित पथिक के लिए प्रकाश-स्तम्भ था।

• • •

माल के मुकदमे

आचार्य द्विवेदी जी पंचायत के फैसले प्रायः अंग्रेजी में लिखा करते थे। उन दिनों अंग्रेजी का ही बोल-बाला था। हिन्दी के आचार्य का अंग्रेजी भाषा में फैसले लिखना, मुकदमों का निर्णय करना तथा राजकीय कार्य में पूर्णरूपेण अंग्रेजी का प्रयोग करना एक आश्चर्यजनक घटना है। किन्तु द्विवेदी जी ऐसा केवल अधिकारियों की सुविधा के लिए ही करते थे। धीरे-धीरे उनका इतना अच्छा अभ्यास हो गया कि उनके निर्णय एक उदाहरण बन गये। संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती, फारसी और उर्दू के अतिरिक्त उन्हें अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान था। यद्यपि वे ग्रेजुएट नहीं थे फिर भी लोगों का अनुमान है कि किसी ग्रेजुएट के मुकाबले में अंग्रेजी भाषा में वे अच्छे-से-अच्छा लेख लिख सकते थे। यही कारण है कि वे आज-कल के ग्रेजुएटों पर प्रायः व्यंग्य किया करते थे। श्री कृष्णदेव प्रसाद जी गौड़ एम० ए०, एल० टी० और आधुनिक युग के हास्य-रसावतार आदरणीय 'बेढब बनारसी' जी ने अपनी पुस्तक द्विवेदी जी के पास भेजी। समर्पण के एक ही वाक्य में असावधानी से 'मुझे' तथा 'हमें' दोनों शब्दों का प्रयोग हो गया। गौड़ जी ग्रेजुएट थे। द्विवेदी जी को ग्रेजुएटों

पर चुटकी लेने का अवसर मिला। उन्होंने पुस्तक की प्रशंसा के साथ यह भी लिख मारा—"वाह रे एम० ए० ! कुछ मैं, हम का भी खयाल है !" आचार्य द्विवेदी जी के एक फैसले की प्रतिलिपि देखने के बाद एक प्रतिष्ठित वकील ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"इतना अच्छा जजमेन्ट प्रथम-श्रेणी के मजिस्ट्रेट क्या लिखेंगे ?"

उन दिनों पंचायतों को फौजदारी के अतिरिक्त माल के भी मुकदमे करने का अधिकार था। ये मुकदमे साधारणतया कर्ज़ से संबंधित होते थे। एक व्यक्ति जब दूसरे को कर्ज देकर उसे वसूल नहीं कर पाता था तो वह पंचायत का द्वार खटखटाता था। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि किसी निर्धन, असहाय एवं पीड़ित व्यक्ति को व्यर्थ में परेशान करने के लिए फर्जी मुकदमे दायर कर दिये जाते थे। इन मुकदमों का आधार गांव की पार्टीबाजी पर आधारित था। यदि कोई सदस्य इन रहस्यों का भंडाफोड़ करता तो वह दलबंदी का शिकार होता। पञ्चायत दौलतपुर के एक सदस्य इस दलदल में, ऐसा फंसे कि उसी में समा गये। उन्हें पञ्चायत की सदस्यता तक से वंचित होना पड़ा। बाद में कुछ लोगों ने द्विवेदी जी को भी इस कीचड़ में घसीटने का प्रयास किया; किन्तु उन की दृढ़ता के समक्ष उन्हें मुँह की खानी पड़ी।

अप्रैल १९३२ की बात है। एक विशेष ग्राम के कुछ व्यक्तियों ने एक नाटक रच डाला। पंचायत दौलतपुर में उसी

गांव के एक सज्जन पञ्च भी थे। पंच महोदय से संबंधित किसी व्यक्तिपर पंचायत में माल का मुकदमा दायर किया गया। मुकदमा सरासर झूठा था। एक भी गवाह न मिला। द्विवेदी जी ने उसे खारिज कर दिया। वास्तविकता यह थी कि वे सब लोग मुकदमे का सहारा लेकर पंच महोदय को निकलवाना चाहते थे। मुकदमा खारिज होते ही पंच महोदय पर आक्षेप आया। उनकी शिकायत उच्च अधिकारियों से की गई। फलस्वरूप सदस्य महोदय पंचायत से अलग कर दिये गये। सदस्यता से छुटकारा पाते ही उन्होंने अपने प्रतिद्वन्द्वियों पर हाथ साफ किया। इस पर सदस्य महोदय को दूसरे मुकदमे में पुनः फँसाया गया। मुकदमा दायर करना तो सरल था किन्तु उसकी पुष्टि करना साधारण काम न था। तथ्यों की पुष्टि करनेवाला एक भी गवाह न मिल सका। मुकदमा प्रमाणों के अभाव में खारिज कर दिया गया। द्विवेदी जी ने रजिस्टर पर एक नोट भी मुकदमे से संबंधित लिखा। इस पर वादी ने पुनः प्रार्थना-पत्र दिया। प्रार्थना-पत्र का तात्पर्य था—"पदच्युत सदस्य निहायत मालदार और जबरदस्त व्यक्ति है। उसके भय से हमारे गवाह साक्षी देने में डरते हैं। हम लोगों ने इन्हें पञ्चायत की सदस्यता से वंचित करा दिया है; अतः इसी अदावत में ये हम लोगों को परेशान करते हैं। चूंकि इनकी धाक ज्यादा है, इसलिये कोई भी इनके समक्ष गवाही देने को तैयार नहीं होता; अतः हमारा मुकदमा जिला हाकिम के पास भेज दिया जाय।"

यह अपने ढंग का निराला प्रार्थना-पत्र था। फैसला हो जाने के बाद दूसरे न्यायालय में भेजने की मांग की गई थी। द्विवेदी जी इस कुचक्र को खूब समझते थे। उन्होंने कठोरता से काम लिया। प्रार्थना-पत्र पर उन्होंने आदेश लिखा—

"मुकदमा बहुत हो चुका है। पंचायत इसे जिले को भेजना उचित नहीं समझती। रजिस्टर में जो नोट दिया जाता है, उसे देखिए!"—*म० प्र० द्विवेदी।*

इस प्रकार अंतिम निर्णय सुनने के बाद विरोधियों के हाथ-पैर फूल गये। मुकदमा वहीं समाप्त हो गया। द्विवेदी जी के कठोर कर्तव्य से कुछ लोग रुष्ट भी हो गये; किन्तु उन्होंने 'सत्य' की हत्या न होने दी। दलबंदी का दलदल फूलता, पिचकता रहा। द्विवेदी जी अपना काम करते रहे। उन्होंने इस अवधि में राजस्व के सैकड़ों मुकदमे किये। उन सब का विस्तृत विवरण देना मैं उचित नहीं समझता। ऐसा संभव भी नहीं है। फिर भी, एक मुकदमे की रूप-रेखा प्रस्तुत कर रहा हूँ। इससे प्रतीत हो जायगा कि आचार्य जी कितना विवेकपूर्ण निर्णय देते थे। यही कारण है कि उनके निर्णय उपहास नहीं बन पाये। अपील होने पर भी वह बहाल रहे।

जून, १९३० की बात है। माल का एक मुकदमा श्री शिवगोपाल पुत्र रामदयाल सा० दौलतपुर ने श्री ब्रह्मादीन पुत्र रामदुलारे पर दायर किया। २ जून, १९३० को पंचायत ने श्री शिवगोपाल मिश्र के पक्ष में निर्णय दिया। २४ रु० ६

आना की डिगरी ब्रह्मादीन पुत्र रामदुलारे पर हुई। पंचायत के निर्णय के अनुसार उचित तो यह था कि श्री ब्रह्मादीन उक्त धन-राशि श्री शिवगोपाल को दे देते; किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। कई मास तक लगातार प्रतीक्षा करने के बाद जब डिगरी का रुपया न मिला, तब श्री शिवगोपाल ने पंचायत से पुनः निवेदन किया कि रुपया वसूल करा दिया जाय। रुपया वसूल होने का केवल एक ही रास्ता था। वह था 'वारंट-कुर्की' के द्वारा। यह पंचायत की अधिकार-सीमा के बाहर का प्रश्न था। इसका अधिकार केवल एस. डी. ओ. को होता है। फलस्वरूप श्री शिवगोपाल के निवेदन पर आचार्य जी ने पञ्चायत-अधिकारी को लिखा :—

पञ्चायत दौलतपुर,
४ नवम्बर, १९३०।

सेवा में,

पञ्चायत-अधिकारी, रायबरेली !

प्रिय महोदय,

शिवगोपाल पुत्र रामदयाल मिश्र
ग्राम दौलतपुर।

बनाम

ब्रह्मादीन पुत्र रामदुलारे सा० दौलतपुर
मुकद्दमा नं०—१६, १९३०
२९ रुपये ९ आने की डिगरी

दिनांक २ जून, १९३० को इस पंचायत ने श्री शिवगोपाल मिश्र के पक्ष में २४ रु० ९ आने की डिगरी दी है, जो कि श्री ब्रह्मादीन, पुत्र रामदुलारे सा० दौलतपुर थाना सरेनी के विरुद्ध है। डिग्रीदार श्री शिवगोपाल मिश्र ने उक्त डिग्री की धनराशि वसूलने के लिए प्रार्थना-पत्र दिया है। मैं आप का अधिक कृतज्ञ होऊँगा; यदि आप उस धन-राशि की वसूली करा दें। यह धनराशि बकाया लगान है। पंचायत के निर्णय के बाद ही यह धन-राशि प्रतिवादी से डिग्रीदार को मिल जानी चाहिये।[1]

आपका
म० प्र० द्विवेदी
सरपंच

आचार्य द्विवेदी की इस रिपोर्ट पर जिला-अधिकारियों ने 'वारंट कुर्की' निकाली। कुर्की का आदेश ले कर कुर्क अमीन डिग्रीदार श्री शिवगोपाल मिश्र के साथ ब्रह्मादीन के मकान पर गया। ब्रह्मादीन मकान पर न थे; वह कानपुर गये थे। घर का द्वार भीतर से बन्द था। कुर्क अमीन श्री शिवगोपाल के साथ लौट आया। कुर्की करने के लिए उसे कोई चल-सम्पत्ति न मिल सकी। शिवगोपाल ने दिनांक २६–२–३१ को तत्सम्बन्धी रिपोर्ट पञ्चायत में देते हुए लिखा—"मैं कुर्क अमीन के साथ ब्रह्मादीन के मकान पर गया। मकान अन्दर से बन्द था।

१. मूल अंग्रेजी से अनूदित।

ब्रह्मादीन कानपुर गये थे। बाहर कोई चीज कुर्की के काबिल नहीं मिली। इस वजह से कुर्की नहीं हो सकी।''

—(ह०) *शिवगोपाल मिश्र, दौलतपुर।*

श्री ब्रह्मादीन सम्भवतः कानपुर में नौकरी करते थे। इस कुर्की की सूचना उनके पास भेजी गयी। उन्होंने रुपयों का प्रबंध कर, घरवालों को सूचना दी कि रुपया दे दिया जाय। रुपया श्री शिवगोपाल मिश्र को दे दिया गया। श्री मिश्र ने इस की सूचना पंचायत को देते हुए लिखा—''मुझे डिग्री का २४ रु० ९ आ० आज डिग्री के कर्जदार श्री ब्रह्मादोन के वालिद श्री रामदुलारे से मिल गये।''

—(ह०) *शिवगोपाल मिश्र।*

रुपया वसूल हो जाने के बाद आचार्य द्विवेदी जी ने मिसिल पर लिखा—"These papers are now filed."

उन दिनों कुर्की की फीस सम्भवतः एक रुपया थी। जेनी बनाम इमदाद के मुकदमा नं० २३, सन् १९२९ के एक नोट से उक्त बात का स्पष्टीकरण हो जाता है। यह धन-राशि सरकारी कोष में जमा होती थी। उक्त मुकदमे में पञ्चायत ने कुर्की फीस को तहसील के खजाने में न भेज कर पंचायत-कोष में जमा कर दिया। जब तहसीलदार ने पंचायत को कुर्की फीस जमा करने को लिखा तब द्विवेदीजी ने भग्गू चपरासी से उक्त धनराशि भेज दी।

आचार्य द्विवेदी जी, किसी विवादास्पद मामले में मौके का मुआइना भी करते थे। जिस गाँव में ऐसी कोई बात होती, वहाँ अवश्य पहुँचते। १९३६ ई० में आलम पुत्र टिर्रा पासी

ग्राम दौलतपुर ने श्री गरायर पुत्र लाला पासी के ऊपर एक मुकदमा हानि पहुँचाने का दायर किया। घटना इस प्रकार थी—आलम पुत्र टिर्री पासी एक दीवाल बना रहा था। गरायर ने उसे गिरा दिया और कहा कि यह मेरी भूमि पर है। आलम ने पञ्चायत का द्वार खटखटाया। मुकदमा चला। मुकदमे के दौरान दोनों में काफी कटुता बढ़ गयी। धीरे-धीरे झगड़े की नौबत आ गई। आचार्य द्विवेदी जी ने मौके का निरीक्षण तथा भूमि का सर्वेक्षण किया। श्री गरायर पुत्र लाला पासी की भूमि की नाप-जोख करा कर उन्होंने विवरण लिखा—

(१) पूरब की ओर चौड़ाई—८॥
(२) पश्चिम की ओर चौड़ाई—७॥
(३) लम्बाई उत्तर की ओर—१९॥
(४) लम्बाई दक्षिण की ओर—१९॥

योग = ७ बिस्वा १६ बिस्वांसी
कुल भूमि = ७ – १६
गरायर की भूमि = १ – ५

६—११ शेष भूमि।

इस पैमाइश से स्पष्ट हो गया कि शेष भूमि पर गरायर का अनधिकृत कब्जा है। यह भूमि आबादी की है। आलम पुत्र टिर्री को मकान बनाने का अधिकार है। नाप-जोख हो

जाने के बाद गरायर की आँख खुल गयी। उसने समझौता कर लिया। दोनों ने अपनी-अपनी अंगूठा-निशानी लगा कर पञ्चायत के पास सुलहनामा भेजा—

"जनाब आली, सरपञ्च साहब,
पञ्चायत, दौलतपुर।

अर्ज गुजारिश है कि मैं आलम वल्द टिर्रा, कौम पासी साकिन दौलतपुर का हूँ। हम लोग आपस में सुलह हो गये हैं। मेरा मुकदमा नुकसान पहुँचाने व दीवाल बनाने का था। उसे मैं उठाये लेता हूँ। हम लोगों में, अब उस मामले में किसी प्रकार का झगड़ा न होगा। अब मैं अपनी दीवाल बदस्तूर बना लूँगा। गरायर पासी झगड़ा न करेंगे।"

(नि० अं०) आलम पासी
गरायर पासी
१४–२–३६

मुकदमा समाप्त हो गया। दीवाल बन गयी। झगड़ा भी समाप्त हो गया। यह था मौके के निरीक्षण का फल! आचार्य द्विवेदी जी एक-एक बात तिथि एवं समय सहित अपनी फाइल में अंकित कर लेते थे। यही कारण है कि आज उन फाइलों का अक्षर-अक्षर उन की महानता का परिचय दे रहा है।

●●●

स्वाभिमानी सरपंच

❖

"कहिये, कहाँ की तैयारी है ?"

"जी, इच्छा हुई है कि गाँव घूम आऊँ।"

"अच्छा !" कह, द्विवेदी जी मुस्कराने लगे। श्री यज्ञदत्त जी यथास्थान खड़े रहे। विहँस कर द्विवेदी जी ने कहा—"किसी को साथ लेते जाओ, गाँव घूमने में सुविधा रहेगी।"

सांध्य-वेला थी। आचार्य द्विवेदी जी के उत्तराधिकारी श्री कमला किशोर जी के बहनोई श्री यज्ञदत्त जी बाहर खड़े थे। ससुराल में सम्भवतः उन का यह प्रथम आगमन था। दो-एक दिन रहने के पश्चात् उन्होंने गाँव घूमने की इच्छा व्यक्त की। वह सज-धज कर बाहर निकले। आचार्य जी की दृष्टि उन पर पड़ी। उन्होंने पूछ ही तो लिया—"कहिये, कहाँ की तैयारी है ?" श्री यज्ञदत्त जी ने अपना मन्तव्य बताया। द्विवेदी जी ने एक सज्जन को उनके साथ कर दिया। जब दोनों व्यक्ति चलने लगे, तब उन्होंने कहा—"जाओ, घूम-फिर आओ, लोगों से मिल आओ; किन्तु यह देखना कि बात-चीत में तुम्हें कोई दबाने न पाये।"

श्री यज्ञदत्त जी आदेश पा कर चल पड़े। आचार्य जी बाहर चबूतरे पर बैठे रहे। श्री यज्ञदत्त जी को दी गई उक्त आज्ञा में

द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की छाप मिलती है। उनके जीवन का सिद्धान्त था कि " : ......Let no one overtake you ?"

स्वाभिमान ही मानव-जीवन का गौरव है। उस की रक्षा से ही व्यक्तित्व का विकास होता है; किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि स्वाभिमान का दायरा संकुचित न हो। वह व्यक्ति के साथ-साथ गाँव, समाज, भाषा और राष्ट्रीय-विकास में भी सहायक रहे। देश की मर्यादा की रक्षा करे। आचार्य द्विवेदी जी जहाँ स्वाभिमानी थे, वहीं वह अपने शुभचिंतकों, सम्बन्धियों, हितैषियों के ही नहीं, अपनी पत्रिका के लेखकों के भी स्वाभिमान की रक्षा करते थे। किसी की क्या हिम्मत कि वह उनके किसी लेखक पर आघात कर दे। अपने मित्रों एवं हितैषियों पर की गई चोट को वह अपने पर मानते थे। अनेक बार ऐसे अवसर आये जब द्विवेदी जी को इस प्रकार का सामना करना पड़ा। उन्होंने तत्काल ही उस का मुँहतोड़ उत्तर भी दिया। इसका सबसे ज्वलन्त प्रमाण आचार्य केशवप्रसाद जी मिश्र की दुर्भिक्ष पीड़ितों से सम्बन्धित कविता है।

आचार्य द्विवेदी जी सरस्वती का सम्पादन कर रहे थे। उसी समय पर श्री केशवप्रसाद जी मिश्र ने एक कविता सरस्वती में प्रकाशनार्थ भेजी। द्विवेदी जी ने उस की त्रुटियों पर लाल निशान लगा कर उसे वापस कर दिया। साथ-ही-साथ सुझाव भी दिया कि वर्तमान दुर्भिक्ष पर कोई कविता लिख कर भेजो। मिश्र जी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने तत्काल ही दुर्भिक्ष-

पीड़ितों पर एक हृदय-विदारक रचना भेज दी। रचना सरस्वती में प्रकाशित हुई। द्विवेदी जी ने उसकी मर्मस्पर्शिनी अभिव्यक्ति की प्रशंसा की। कविता भी दुर्भिक्ष-पीड़ितों का करुण-चित्रण करने में सफल हुई थी। रचना का सरस्वती के माध्यम से यथेष्ट प्रचार हुआ। उस प्रचार का परिणाम यह निकला कि राजस्थान के 'सरदार शहर' के एक सज्जन ने आचार्य केशवप्रसाद जी को ही दुर्भिक्ष-पीड़ित समझ कर कुछ सहायता करने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी को पत्र भी लिखा। द्विवेदी जी को यह अच्छा न लगा। उनके एक लेखक की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। उन्होंने मिश्र जी को बिना सूचना दिये ही उस सहायक को स्पष्ट शब्दों में उत्तर भेज दिया। बाद में मिश्र जी को इसकी सूचना दी।

यही दशा उनकी पञ्चायत में भी थी। वह सदैव अपनी ग्राम-पञ्चायत की प्रतिष्ठा का ध्यान रखते थे। पञ्चायत एवं पञ्चों के स्वाभिमान पर आँच नहीं आने देते थे। कई बार ऐसा हुआ जब पंचायत के पंचों की नीयत पर सन्देह किया गया; उन पर लांछन लगाये गये। सब कुछ होते हुए भी आचार्य द्विवेदी जी ने इन लांछनों के पीछे छिपी मनोवृत्ति को पनपने नहीं दिया। ऐसे अवसर पर कभी-कभी उन्होंने इतने विवेक से काम लिया कि मामला वहीं उभर कर बैठ गया। एक बार एक प्रतिद्वन्द्वी ने ग्राम-पञ्चायत की बैठक के समय कुछ आरोप लगाये। आरोप लगानेवाले महाशय प्रतिष्ठित व्यक्ति थे।

वे द्विवेदी जी के तथाकथित विरोधी भी थे। उन्होंने इन आरोपों को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। परिणाम यह हुआ कि पञ्चायत के समक्ष एक अजीब समस्या पैदा हो गई। उन्हें द्विवेदी जी पर भी सन्देह हुआ; अतः उन्होंने सरपञ्च से स्पष्टीकरण की माँग की तथा उस व्यक्ति के बयानों पर आपत्ति प्रकट करते हुए अलग से एक मुकदमा दायर करने की अनुमति माँगी। द्विवेदी जी ने उन्हें बहुत ही संतुलित शब्दों में उत्तर दिया—

"श्री........................ !

आपको दरख्वास्त का जवाब यह है कि किसी मुकदमे की पेशी के वक्त, अगर कोई फरीक अपने मुखालिफ फरीक को, किसी बात के जवाब में, अपने बचाव के लिए, उसे बेईमान कहे, तो उसका यह कहना, दूसरे फरीक पर तुहमत लगाना, उस पर कलंक लगाना, उसे बदनाम करना है। ऐसी तुहमत ताजीरात हिन्द की दफा ४९९ के अन्दर आती है। यह पञ्चायत की समात के बाहर का जुर्म है। इस वजह से तुम्हारा इस्तिगासा पंचायत में दायर नहीं हो सकता। शायद तुम्हारा लगाया हुआ इल्जाम उस दफे की छूट नं० ९ में आ जाय।"

म० प्र० द्विवेदी

२१-९-३१

आचार्य जी ने उत्तर तो लिख दिया। प्रतिद्वन्द्वी को भीष्म-पितामह की तरह उचित परामर्श भी बता दिया; किन्तु अक-

स्मात् ही उन का विवेक जागरूक हुआ। जिस छूट नं० ९ का उल्लेख उन्होंने किया था, उसके अनुसार, मुकदमा पंचायत में दायर हो सकता था। लेकिन उसके दायर होने पर क्या प्रतिक्रिया होती ? स्पष्ट था—दोनों पक्षों में मनमुटाव बढ़ता। पंचायत के समक्ष व्यर्थ की परेशानी आती। उस आपसी वैमनस्य का प्रभाव पंचायत पर भी पड़ सकता था। यही सब सोच कर उन्होंने संबंधित व्यक्ति के पास वह उत्तर भेज तो दिया; किन्तु परिस्थिति संभालने का उत्तरदायित्व भी ले लिया ; बाद में वह विवाद अपने-आप शांत पड़ गया। पंचायत व्यर्थ के झगड़े से बच गई। पंचों की प्रतिष्ठा रह गई। साँप मर गया, लाठी में दाग भी न लगा।

इस घटना के एक मास पश्चात ही पंचायत के सामने नई परेशानी आ गई। ग्राम-पंचायत दौलतपुर में, पंचायत-क्षेत्र के ही निवासी, एक विशेष व्यक्ति पर एक-साथ चार मुकदमे चल रहे थे। इनमें से दो तो धारा ५०४ के अंतर्गत थे तथा दो धारा ३५२ के। भारतीय दंड-विधान की धारा ५०४ का अपराधी वह होता है जो शांति-भंग करने की नीयत से किसी व्यक्ति की इरादतन तौहीन करे; अर्थात् वह यह जानते हुए कि इस प्रकार के अपमान से कोई आदमी भड़केगा, जिससे शांति भंग होने की आशंका है, फिर भी उसे उत्तेजित करे—ऐसा आदमी उक्त धारा की व्यवस्था के अंतर्गत दंड का भागी होता है। आचार्य द्विवेदी जी ने उक्त धारा के उन दोनों

मुकदमों के अपराधी पर मुकदमा नं० ३०/२, दिनांक २३-१०-३१ को १० रुपये तथा मु० नं० ३१/३, दिनांक २३-१०-३१ में २ रुपये जुर्माना किया। इसी प्रकार धारा ३५२ जिसके अंतर्गत बिना गंभीर उत्तेजना पहुँचे, हमला करना अथवा जुर्म करने के लिए शक्ति का प्रयोग करना—के अनुसार उसी व्यक्ति पर मु० नं० ३२/४ दिनांक २६-१०-३१ को १५ रुपये तथा मु० नं० ३३/५ दिनांक २६-१०-३१ में ३ रुपये जुर्माना किया। इस प्रकार इन चारों मुकदमों के जुर्माने की धनराशि ३० रुपया होती थी। संबंधित अभियुक्त को पंचायत की ओर से उक्त धनराशि जमा करने का आदेश दिया गया। आदेश पाने पर अभियुक्त ने जुर्माने की रकम अदा करने से इंकार कर दिया।

किसी अभियुक्त पर पंचायत जुर्माना करे, और वह उस धन-राशि को अदा न करे, यह न्यायालय का खुला अपमान था। अभियुक्त का इस प्रकार का आचरण पंचायत की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया। जब नियमानुसार पंचायत जुर्माने की रकम वसूल न कर सकी, तो आचार्य जी ने परगनाधीश के पास दिनांक २६ अक्तूबर, १९३१ को रिपोर्ट भेज दी। इस पर अभियुक्त ने और अकड़बाजी दिखाई। फिर भी, द्विवेदीजी लगभग २ मास तक उस की प्रतीक्षा करते रहे। अंत में विवश होकर उन्होंने दिनांक ३०-१२-३१ को परगनाधीश को पुनः लिखा—"कृपया आप मेरी प्रथम रिपोर्ट देखें और उस पर बुद्धिमत्तापूर्वक कदम उठायें।...मुझे कुछ ऐसा लग रहा है कि अभियुक्त

की चल-संपत्ति कुर्क किये बिना काम न चलेगा; क्योंकि उसने जुर्माना अदा करने से साफ इन्कार कर दिया है।"[१]

इस प्रकार चारों मुकदमों का हवाला दे कर द्विवेदी जी ने संबंधित व्यक्ति के विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही की माँग की। अधिकारियों के पास रिपोर्टें जाती रहीं; किन्तु उन पर कोई अंतिम निर्णय न हो सका। इस का जन-जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। लोग यत्र-तत्र पंचायत की खिल्ली उड़ाने लगे। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कहना प्रारंभ कर दिया कि "यदि किसी कमजोर व्यक्ति का मामला होता, तो तत्काल ही जुर्माना वसूल कर लिया जाता। अब पाला पड़ा है सरहंग आदमी से! पंचायत के सभी कानून-कायदे फेल हो गये हैं!" यह तानेबाजी आचार्य द्विवेदी जी को खल गई। उन्होंने पञ्चायत की प्रतिष्ठा का प्रश्न उठाकर त्याग-पत्र की धमकी दी। जिला-अधिकारियों को बहुत ही कठोर शब्दों में स्मृति-पत्र भेजा। द्विवेदी जी का स्मृति-पत्र पहुँचते ही तत्काल कार्यवाही की गई। कुर्की का आदेश निकला और पंचायत का जुर्माना वसूल हो गया।

संविधान का पालन कराने के लिए आचार्य द्विवेदी जी की इस कठोरता के पीछे एक ही भावना अंतर्निहित थी। वह यह कि—"सब लोग कानून की इज्जत करना सीखें। उस का पालन करें। पञ्चायत को सम्मान की दृष्टि से देखें।" यद्यपि

---

१. अंग्रेजी से अनूदित।

उनकी इस प्रकार की कठोरता को लोग बहुधा व्यक्तिगत आक्षेप समझ बैठते थे। यही कारण था कि उनकी मनोवृत्ति ठीक ढंग से न समझ सकने के कारण पञ्चायत के आदेशों को कुछ लोग व्यक्तिगत राग-द्वेष से संबंधित कर देते थे। आचार्य जी इन सब बातों से परे थे। वे संविधान के अनुसार निष्पक्ष होकर कार्य करते थे, क्योंकि वे एक सरपञ्च थे, तानाशाह नहीं। उनका प्रत्येक कदम पंचों की राय से उठता था। इतना होने पर भी कभी-कभी उन्हें विषम-परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था। उनके इस जनतांत्रिक दृष्टिकोण का परिचय इसी घटना के संदर्भ में मिल जाता है। अभियुक्त ने जब जुर्माना न दिया तब पंचायत के सामने गंभीर समस्या उत्पन्न हो गई। उसी समय उसने फैसले की नकल माँगी। आचार्य द्विवेदी जी ने नियमानुसार शुल्क लेकर उसे नकल दे दी। नकल देने के पश्चात् अभियुक्त से रसीद लेकर लिखा लिया—"कार्यवाही की पूरी नकल आज मुझे मिल गई। हस्ताक्षर...।" द्विवेदी जी ने प्रतिलिपि देने के बाद फाइल पर लिखा—"Copy issued at 10 A. M. today."

इतनी नियम-बद्धता एवं लगन का ही परिणाम था कि आचार्य द्विवेदी जी की पंचायत आदर्श पंचायत बन गई। लांछनों एवं व्यक्तिगत आरोपों को सहन करते हुए वे अपने पथ पर बढ़ते रहे। आज भी गाँव के वयोवृद्ध उनकी पुरानी घटनाओं का स्मरण करके गर्व के साथ कहा करते हैं—"दुबौना बड़ा मर्द आदमी था!"

• • •

रूपपत्र अथवा सरदर्द

आचार्य द्विवेदी जी स्वभाव से जितने कठोर थे, उतने ही विनोदी भी। उनकी विनोद-प्रियता, चुटीले शब्द एवं व्यंग्योक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। उनका यह रूप प्रायः उस समय देखने को मिलता था जब किसी मामले में वे जान-बूझकर अनजान बन जाते थे। व्यंग्य के विषय में क्या कहना है? फिर बुढ़ापे का व्यंग्य? सुनता हूँ जब 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' ने अपनी परीक्षाएँ चलाईं तब द्विवेदी जी ने सम्मेलन की 'प्रथमा-परीक्षा' का फार्म भर कर भेज दिया। यह सम्मेलन की परीक्षाओं पर व्यंग्य भी था और मीठी चुटकी भी! सरपंच की हैसियत से, अधिकारियों से भी वह ऐसा ही व्यंग्य-विनोद किया करते थे। अभी कुछ समय पूर्व एक रूप-पत्र में अंकित 'बाकी', 'बकिया' और 'बकाया' शब्दों के शब्दार्थ पर उन्होंने तहसीलदार को परेशान कर दिया था। यह घटना अभी विस्मृत भी न हो पाई थी कि पंचायत आफिसर का एक नया आदेश आ गया। उस आदेश के अनुसार "पंचायत के रजिस्टर में अंकित दीवानी और फौजदारी के मुक़दमों की मिसिलें, सदर मुहाफिजखाना में जमा होनी चाहिएं।" परन्तु बहुधा सरपंच-गण ऐसा नहीं किया करते थे; अतएव आज्ञा हुई कि सरकार के जरिये हर सरपंच को

लिखा जाय कि वे वर्ष के अन्त में नये रजिस्टर खोल लिया करें तथा अनिर्णीत मुकदमों को नये रजिस्टर में उतार लिया करें। समाप्त रजिस्टर एक वर्ष तक अपने पास रखने के बाद मुहाफिजखाना फौजदारी में जमा करें। यही दशा मिसिलों की भी थी। सरकारी आदेश में यह भी स्पष्ट निर्देश था कि—"दीवानी और फौजदारी का साल ३१ दिसम्बर को समाप्त होता है। आइन्दा इसी तरीके से काम किया करें।"

उक्त राजकीय आदेश द्विवेदी जी को प्राप्त हुआ। उन्होंने उसे अपनी फाइल में पत्रांक ७६८ छोड़ कर लगा दिया। जानकारी के लिए आदेश-पत्र पर नोट भी लिखा—"नया वर्ष १–१ से प्रारम्भ होगा तथा पुराना ३१–१२ को समाप्त होगा। इसी आदेश के साथ-साथ एक रूप-पत्र भी था। रूप-पत्र में माल फौजदारी के मुकद्दमों का वार्षिक विवरण देना था। पंचायत के कार्य का वार्षिक लेखा-जोखा भी इसी रूप-पत्र के साथ जाना था। रूप-पत्र के ग्यारह कालम थे :—

१—बकाया, (पिछले साल का दीवानी फौजदारी) मीजान !

२—मुलदायरा, (दीवानी, फौजदारी) मीजान।

३—फैसला (दीवानी, फौजदारी) मीजान।

४—बाकी (याने जेर तजवीज दीवानी, फौजदारी) मीजान।

५—मीजान (दीवानी, फौजदारी)

६—अन्दर साल किस कदर रुपया–डिगरी वसूल हुआ।

७—सैनीटरी ग्रांट कितनी मिली ?

८—मुकदमा जिनमें अपील हुई।

९—नतीजा अपील।

१०–क्या काम किया गया और उसमें किस कदर सर्फा हुआ।

११–कैफियत।

उपर्युक्त रूप-पत्र उर्दू में था। आचार्य द्विवेदी जी ने उसका हिन्दी-रूपांतर करके भरना प्रारम्भ किया। कालम एक से नौ तक तो वह भरते चले गये। दसवें कालम पर पहुँचते ही उनकी लेखनी रुक गई। थोड़ी देर तक सोचते-विचारते रहे। माथा-पच्ची करने पर भी जब परेशानी समझ में न आई, तब उन्होंने पंचायत आफिसर को लिखा—"पंचायत ने सिर्फ एक पुल की मरम्मत कराई है। खाना १० में यदि उस खर्च की दरकार हो तो डेढ़ रुपया खर्च हुआ है।" कालम दस अभी सादा पड़ा था। वह वैसा ही रह गया। द्विवेदी जी ने उसकी पूर्ति नहीं की, प्रत्युत चुटकी लेते हुए लिखा—"जनाब, काम से क्या मतलब ? समझ में नहीं आया। सर्फे से भी क्या मतलब ? कागज, कलम, दावात, लकड़ी, ईंट किसका सर्फा ? रूप-पत्र अविकल रूप में पंचायत-अधिकारी के पास चला गया।

उन्हें इस सर्फे का मतलब कौन समझाये ?

द्विवेदी जी ने दूसरी चुटकी ली। सरकारी आदेश आया कि वर्ष के प्रारम्भ में नये रजिस्टर खोल लिया करें। वर्ष प्रथम जनवरी से प्रारम्भ होता था। इस आदेश के पूर्व एक आदेश और आ चुका था, जिसमें वर्ष अक्तूबर से सितम्बर तक बताया गया था तथा यह निर्देश दिया गया था कि "पंचायतें अपनी रिपोर्ट ३० सितम्बर तक अवश्य भेज दिया करें।" दोनों आदेशों में विरोधाभास था। यह विरोधाभास आचार्य जी के लिए सरदर्द बन गया। उनकी समझ में न आया कि पहले आदेश को मानें या दूसरे को! दोनों आदेश अभी स्टैण्ड करते थे। उनमें से एक भी निरस्त नहीं हुआ था। यदि दूसरा आदेश ठीक है तो पहला रद होना चाहिए। यदि पहला ठीक है तो दूसरा निकल कैसे गया? यह एक समस्या थी। इसका निराकरण होना आवश्यक था। आचार्य जी ने पञ्चायत-अधिकारी से स्पष्टीकरण की माँग की :—

"जिला पञ्चायत अधिकारी!

कृपया, आप मेरे संलग्न पत्र के दूसरे पैराग्राफ को पढ़ लीजिए। मुझे भलीभाँति स्मरण है कि आपके पिछले आदेश-पत्र में—यह निर्देश था कि पुराने कागजात जमा करने तथा नये रजिस्टर आदि खोलने के लिए पञ्चायतें अपना वर्ष अक्तूबर से सितम्बर तक समझें। क्या आपका वह पिछला आदेश रद समझा जाय?

कृपया तत्सम्बन्धी उत्तर शीघ्रातिशीघ्र डाक द्वारा, मेरे पास सूचनार्थ भेज दीजिये।''[1]

(ह०) म० प्र० द्विवेदी
५-१२-३१

आचार्य द्विवेदी जी ने उक्त पत्र के साथ पञ्चायत अधिकारी के पास एक परिपत्र भी भेज दिया। उपर्युक्त पत्र में जिस दूसरे पैराग्राफ का उल्लेख था वह यों था—''सम्भवतः अगस्त के अन्तिम सप्ताह में, या २२ अगस्त को आपका एक बिना तारीख का आदेश-पत्र मुझे प्राप्त हुआ। जो मूल आदेश की प्रतिलिपि था। उसमें यह निर्देश दिया गया था कि पञ्चायतों का वर्ष १ जनवरी से ३१ दिसम्बर तक समझा जाय। सभी कागजात सदर मुहाफिजखाने में भेज दिये जायँ। इसका अर्थ यह है कि पंचायत द्वारा किये गये कार्य के रूप-पत्र, जिनका वर्ष सितम्बर में समाप्त होता है, वे सभी दिसम्बर के अन्त में भेजे जायँ।''

इस पर द्विवेदी जी को आदेश मिला कि आपने पैराग्राफ दो में जिसका स्पष्टीकरण माँगा है, उस पर विचार कर लिया गया है। एक अक्तूबर से ३० सितम्बर तक के कार्य का विवरण उसी प्रकार भेजा जायगा।

आचार्य द्विवेदी जी के स्वभाव की एक विशेषता यह भी थी कि वे जब तक किसी बात को समझ नहीं लेते थे उसे कार्य-रूप में परिणत नहीं करते थे। यही आचरण उनका राज-

---

१. मूल अंग्रेजी से अनूदित।

कीय आदेशों के प्रति भी था। उन्हें जहाँ कहीं भी भ्रम होता, अधिकारियों से स्पष्टीकरण की माँग करते। एक बार में यदि बात समझ में न आती तो बार-बार पूछते। पञ्चायत-अधिकारी का स्पष्टीकरण आ जाने के बाद भी उन्होंने लिखा—"आपने दिसम्बर के अन्त में सभी कागजात सदर मुहाफिजखाने में जमा करने का आदेश दिया है। किन्तु जिलाधीश महोदय अपने शीत-कालीन दौरे में पञ्चायतों का निरीक्षण भी करते हैं। उनके पेश-कार साहब चाहते हैं कि पञ्चायतें जिलाधीश महोदय की जानकारी के लिए अपने कार्य का पूरा विवरण भी दिया करें। उनका दौरा यहाँ प्रायः जनवरी में होता है। ऐसी हालत में, कागज जमा कर देने के बाद, हम उन्हें किस प्रकार विवरण दे सकेंगे? तथा वे निरीक्षण कैसे करेंगे? आप हमारे पञ्चायत-अधिकारी हैं। कृपया थोड़ा-सा समय इस पर विचार करने के लिए भी दीजिए। हमारी कठिनाइयों पर ध्यान दीजिए। वार्षिक कागजों को जमा करने की तिथि पर विचार करके मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं इस दोष-पूर्ण प्रणाली के प्रति कुछ कह सकूँ।"[1]

आचार्य द्विवेदी जी के इस उलझन-पूरित पत्र पर पञ्चायत-अधिकारी ने लिखा—"पञ्चायतों के वार्षिक मुकदमों की रिपोर्ट, जो कि लखनऊ डिवीजन के कमिश्नर महोदय को भेजी जाती है, उसकी अवधि अक्तूबर से सितम्बर तक के राजस्व-वर्ष पर ही आधारित है।"

---

१. मूल अंग्रेजी से अनूदित।

बात स्पष्ट हो गई। जान बची, लाखों पाये। पञ्चायत-अधिकारी ने किसी प्रकार अपना पिंड छुड़ा लिया। अब बारी थी जिलाधीश की !

आचार्य द्विवेदी जी ने नियमानुसार वार्षिक स्टेटमेन्ट बनाया। उसके निर्धारित कालमों को भरा। उसे जिलाधीश महोदय के पास एक नोट लिख कर भेज दिया। नोट था—"......फौजदारी के दो मुकदमे फैसल होने से बाकी हैं। उनमें से एक तो २७ सितम्बर को रजिस्टर किया गया है। दूसरा २८ सितम्बर को। पिछले मुकदमे में मुलजिम पञ्चायत के हलके के बाहर रहता है। लेहाजा उस पर समन नियमानुसार श्रीमान् जी के द्वारा भेजे गये हैं। इससे फैसला होने में देर होगी।"

यह थी द्विवेदी जी की सरकारी अधिकारियों पर व्यंग्योक्ति ! उनके कहने का तात्पर्य था कि यदि श्रीमान् जी के यहाँ विलम्ब न हो तो पञ्चायत शीघ्र ही शेष मुकदमों का फैसला कर डाले। किन्तु विवशता है। हम जितनी शीघ्रता करते हैं, उधर से उतनी ही देर होती है। इससे यह पता लगता है कि आचार्य द्विवेदी जी को पञ्चायत के कार्य में कितनी दिलचस्पी थी। वह शीघ्र और सस्ती न्याय-प्रणाली के परिपोषक थे। ऐसी प्रणाली जिससे जनता को कष्ट भी न हो और सच्चा न्याय भी उसे मिल जाय। उन्होंने अपनी पञ्चायत का ढाँचा इसी प्रणाली पर आधारित किया था।

आचार्य जी की सरपञ्ची की चर्चा आज भी गाँवों में हुआ करती है। कुछ वयोवृद्ध लोगों ने तो यहाँ तक बताया कि आचार्य द्विवेदी जी जब कर्तव्यपरायणता के वशीभूत होकर किसी गरीब व्यक्ति पर जुरमाना कर देते थे तो उन्हें बहुत कष्ट होता था। जब अभियुक्त रोने-गिड़गिड़ाने लगता और अपनी असमर्थता प्रकट करता तो वे द्रवीभूत होकर जुर्माने की धनराशि अपने पास से पञ्चायत-कोष में जमा कर देते। अपने पास से रुपया देना उन्हें स्वीकार था किन्तु सहानुभूति में न्याय का गला घोंटना नहीं। एक बार एक सज्जन ने कह ही तो दिया—"बाबा, अपने पास से ही पैसा अदा करना था तो जुर्माना ही न किये होते।"

"बेटा," द्विवेदी जी ने उत्तर दिया—"दण्ड-विधान के समक्ष निर्धन एवं धनवान दोनों समान हैं। सरपञ्च की हैसियत से मैं किसी पर द्रवित होकर न्याय की हत्या नहीं कर सकता। निर्णय हो जाने के पश्चात् किसी गरीब की सहायता करना मेरा व्यक्तिगत मानवीय कर्तव्य है।"

आचार्य द्विवेदी जी के इन सब कार्यों को प्रस्तुत करने का मेरा यह तात्पर्य नहीं कि आज की पंचायतें अथवा पंच-सरपंच भी ऐसा ही करें, मेरा उद्देश्य केवल यह है कि वे इससे प्रेरणा लें, प्रकाश लें और जन-जीवन को युग के अनुरूप बनायें।

• • •

एक गाँव और अखिल भारतीय सरपंच

दौलतपुर ग्राम की जिसने भी यात्रा की, वही द्विवेदी जी की जनसेवा पर रीझ गया। बाहर के जितने भी व्यक्ति उनके दर्शन करने आते, वे पञ्चायत की कार्यवाही अवश्य देखते। निर्माण-कार्य चल रहे थे। एक छोटा-सा ग्राम आदर्श-ग्राम बन गया था। पाठशाला, अस्पताल, डाकघर, कांजीहाउस, गोशाला सभी की स्थापना हो चुकी थी। साहित्यकारों ने तो अपने संस्मरणों में ग्राम के विकसित रूप का यत्र-तत्र उल्लेख किया ही है; अधिकारियों ने भी वहाँ की सफाई, शिक्षा-योजना तथा पंचायत के कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इन्हीं बातों से प्रभावित हो कर लालगंज निवासी—व्रजभाषा के कवि—श्री व्रजनन्दन जी दौलतपुर ग्राम देखने चल पड़े। लालगंज से दौलतपुर १७-१८ मील के लगभग है। श्री व्रजनन्दन जी ने सोचा, आचार्य के पास जा रहा हूँ। कोई उपहार लेता जाऊँ। अपनी कवि-प्रकृति के अनुसार उन्होंने उपहार के लिए कमल के फूलों को चुना। कमल के पाँच पुष्पों को तोड़ कर उन्होंने उन का एक गुच्छा बनाया। उस गुच्छे को गमछे में लपेट कर वह दौलतपुर चल पड़े। श्री व्रजनन्दन जी रसराज की जीवित प्रतिमा हैं। स्वभाव भी विनोदी है। द्विवेदी जी भी उनसे कम न थे। श्री व्रजनन्दन जी

को देखते ही उन्होंने पूछा—"कुछ लाये हो ?" श्री ब्रजनन्दन जी ने कमल के पाँच-पुष्पों का गुच्छा गमछे से खोलते हुए कहा—"हाँ, आचार्य के लिए मैं यह शतदल के पाँच-पुष्प लाया हूँ।"

"पाँच ही क्यों लाये ?"

"इसलिए कि आप पंच-परमेश्वर हैं !"

श्री व्रजनंदन जी की मौलिक सूझ पर द्विवेदी जी हँस पड़े। बोले—"कवि जी, इन्हें किसी देवता के ऊपर चढ़ा आइये, मनुष्य इनका भार न सँभाल पायेगा !"

श्री ब्रजनंदन जी को पुनः विनोद सूझा। सामने ही माता जी का मंदिर था। वह उसी में प्रवेश कर गये। एक पुष्प उन्होंने सरस्वती, दूसरा लक्ष्मी, तीसरा आचार्य पत्नी की प्रतिमा पर चढ़ा दिया। शेष दो-पुष्प लेकर वह लौट पड़े। एक उन्होंने आचार्य जी को 'त्वदीयं वस्तु···" कहते हुए समर्पित कर दिया। अब भी एक पुष्प बच रहा था। श्री व्रजनन्दन जी इसके उपयोग के विषय में सोच ही रहे थे कि आचार्य जी का हाथ बढ़ा। उन्होंने फूल छीनकर व्रजनंदन जी के गले में खोंस दिया। और हँसते हुए कहा—"मंदिर की देवियों पर तो चढ़ा आये, गले के शालिग्राम ने क्या अपराध किया है ?" वास्तव में बात यह थी कि श्री व्रजनन्दन जी गले में शालिग्राम को बटिया लटकाये थे। द्विवेदी जी का व्यंग्य उसी पर था। बाद में द्विवेदी जी ने उन्हें

अपने निर्माण-कार्यों की झाँकी दिखाते हुए कहा—"दौलतपुर को मैं एक आदर्श ग्राम बनाना चाहता हूँ।"

यह लगभग ३५ वर्ष पुरानी घटना है। किन्तु श्री व्रजनन्दन जी अपनी स्मृतियों के पटल में इसे ज्यों-को-त्यों अंकित किये हैं। शालिग्राम की बटिया के स्थान पर अब उनके कंठ में यही घटना है, जिसे वह प्रायः लोगों को सुनाया करते हैं। वह सुनाते-सुनाते आत्मविभोर हो उठते हैं, और आँखों में आँसू आ जाते हैं। द्विवेदी जी की ग्राम-सेवा-भावना का भी वर्णन करते हुए वह नहीं थकते। इसी प्रकार बाबा राघवदास, लक्ष्मीधर वाजपेयी तथा हरिभाऊ उपाध्याय आदि ने द्विवेदी जी की ग्राम-सेवा की चर्चा मुक्तकंठ से की है। यह तो रही साहित्यकारों की बात। अब मैं तत्कालीन अधिकारियों द्वारा किये गये पंचायत के निरीक्षणों में से द्विवेदी जी की प्रशंसा के कुछ उद्धरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। इनसे पता लगेगा कि नायब तहसीलदार से जिलाधीश तक सभी छोटे-बड़े अधिकारी द्विवेदी जी के कार्य से कितना अधिक प्रभावित थे।

पंचायत दौलतपुर की स्थापना यद्यपि १९२२ में ही हो गई थी, किन्तु सन् १९२२ से २४ तक के निरीक्षण उपलब्ध नहीं हैं। निरीक्षण-पुस्तिका में सन् १९२५ से १९३६ तक के निरीक्षण मिलते हैं, जिनमें द्विवेदी जी का गुण-गान है। मैं इन उद्धरणों को यहाँ उसी क्रम से प्रस्तुत कर रहा हूँ। सभी निरीक्षण अंग्रेजी में हैं।

दिनक २६-२-२५ को तहसीलदार डलमऊ ने पंचायत का निरीक्षण करते हुए लिखा—"पंचायत की कैश-बुक बहुत ही अच्छी दशा में है। १५ रु० १५ आने ३ पाई सरपंच के पास है। २० रु० पोस्ट आफिस में जमा है। सरपंच बहुत ही योग्य एवं उपयुक्त व्यक्ति हैं। उनका कार्य अत्यन्त सन्तोष-जनक है।"

तहसीलदार महोदय द्विवेदी जी के असाधारण व्यक्तित्व से सर्वथा अपरिचित थे। वह अभी नये-नये ही आये थे। उपर्युक्त निरीक्षण उन्होंने ऐसे ही कामचलाऊ ढंग से लिख डाला था। बाद में उन्हें द्विवेदी जी की महत्ता के विषय में ज्ञात हुआ तो उन्होंने खेद प्रकट करते हुए दिनांक १३-१-२७ को लिखा—"मुझे इस बात का अत्यधिक दुःख है कि मैं सरपंच की योग्यता, अनुभवशीलता, एवं कर्मठता को अपने पिछले निरीक्षण में महत्त्व नहीं दे पाया। उनका उचित मूल्यांकन नहीं कर सका। इसका कारण यह है कि मेरे मुख्यावास से दौलतपुर ३२ मील दूर है। रास्ता भी कच्चा है। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि ग्राम-पंचायत, दौलतपुर को पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के रूप में एक बहुत ही अच्छा एवं योग्य सरपंच मिल गया है। सरपंच साहब अधिनियम एवं कानून के ज्ञाता हैं। वे बहुत ही अनुभवी एवं सुशिक्षित हैं। उनका व्यक्तित्व प्रभावोत्पादक है। मैं उनकी विद्वत्ता एवं योग्यता का लोहा मान गया हूँ।"

तहसीलदार महोदय के उपर्युक्त निरीक्षण के बाद ही पंचायत के कार्यों की एक लम्बी प्रशस्ति-शृंखला चल पड़ी जो इस प्रकार है—

"मैंने आज दौलतपुर ग्राम पंचायत का निरीक्षण किया। सरपंच पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी बहुत ही योग्य एवं सुलझे व्यक्ति हैं।

(ह०) परगनाधीश

२३–२–२७

❀ ❀ ❀

"....मैंने आज दौलतपुर-पंचायत का निरीक्षण किया। पंचायत का हिसाब-किताब एवं अन्य तत्संबंधी कागजात बहुत ही स्वच्छ तथा व्यवस्थित ढंग से हैं। सरपंच बहुत ही योग्य एवं मेधावी व्यक्ति हैं। वे पंचायत के कार्य में विशेष दिलचस्पी लेते हैं। पंचायत इस समय सफाई का कार्य अपने हाथ में लिये है।"

(ह०) नायब तहसीलदार

१६–९–२७

❀ ❀ ❀

"पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, भू० पू० सम्पादक 'सरस्वती' सौभाग्य से दौलतपुर ग्राम-पंचायत के सरपंच हैं। वे बहुत ही

योग्यता से पंचायत का कार्य करते हैं। पंचायत ऐक्ट के तो वे प्रकांड-पंडित हैं।''

(ह०) परगनाधीश
१९–१–२८

❀ ❀ ❀

''मैंने पंचायत के कार्य का निरीक्षण किया। सरपंच इसमें अत्यधिक दिलचस्पी लेते हैं। उनके कार्य का ढंग भी व्यवस्थित एवं वैधानिक है। यह पंचायत बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है यदि इसे धारा २४ के उपयोग का अधिकार मिल जाय।''

(ह०) परगनाधीश
८–२–२९

❀ ❀ ❀

''सरपंच, पंचायत के कार्य में अत्यधिक दिलचस्पी लेते हैं।''

(ह०) जिलाधीश
७–१०–३०

❀ ❀ ❀

''....पंचायत अपनी कर्मठता के कारण असाधारण ख्याति अर्जित कर चुकी है।''

(ह०) जिलाधीश
४–१२–३१

❀ ❀ ❀

"...मैंने पञ्चायत दौलतपुर को एक सक्रिय पञ्चायत के रूप में पाया। पञ्चायत का कार्य पूर्ण-रूपेण संतोषजनक है। सरपंच पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी के पथ-प्रदर्शन में यह पंचायत आशातीत सफलता प्राप्त कर रही है। मैंने आज तक जितनी भी पंचायतें देखी हैं, यह उनमें सर्वोपरि है।

(ह०) तहसीलदार

१८-१-३२

❀ ❀ ❀

"...आबादी के निकट एक पशु-गृह है। उसके पशुओं को पानी का विशेष कष्ट है। गर्मी के दिनों में उन्हें गंगा नदी तक जाना पड़ता है। इस असुविधा को दूर करने के लिए पंचायत १०० रु० खर्च करने को तैयार है। अगर कुछ सैनेटरी ग्रांट मिल जाय तो यह कार्य पूरा हो सकता है। यद्यपि अब मार्च का महीना समाप्त हो रहा है। अगले आर्थिक वर्ष में यह कार्य अवश्य हो जाना चाहिए। इस ओर मैं परगनाधीश महोदय का विशेष ध्यान आर्कषित करता हूँ। यहाँ की पंचायत बहुत ही लाभदायक सिद्ध हो रही है।

(ह०) तहसीलदार

१२-३-२६

❀ ❀ ❀

"...एक पशु-गृह जिलाबोर्ड ने दौलतपुर में पंचायत के सहयोग से खोला है। यह प्रथम पंचायत है जिसने अपने व्यय

पर एक चिकित्सालय की स्थापना की है। इस चिकित्सालय में आयुर्वेदिक एवं होम्योपैथिक, दोनों प्रकार को औषधियाँ मुफ्त वितरित की जाती हैं। पंचायत बहुत ही जनोपयोगी कार्य कर रही है। सरपंच को जनता तथा अपने सदस्यों का पूर्ण दिश्वास प्राप्त है। पंचायत का कार्य प्रशंसनीय है।''

(ह०) परगनाधीश
५-१२-३२

❀ ❀ ❀

''...पंचायत को उसके पक्ष में बहुत अच्छा जनमत प्राप्त है। सरपंच पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रशंसा अनेक आदमियों के मुख से सुन चुका हूँ। उन्होंने सचमुच पंचायत के माध्यम से बहुत ही जनोपयोगी कार्य किये हैं। मैं इस पंचायत की हार्दिक सफलता चाहता हूँ। यह इस पंचायत का सौभाग्य है कि उसे सरपंच के रुप में बहुत ही योग्य, कर्मठ एवं ईमानदार व्यक्ति मिला है।''

(ह०) परगनाधीश

❀ ❀ ❀

''सरपंच की ख्याति मुझे यहाँ तक खींच लाई! वास्तव में उन जैसा जन-सेवक मिलना कठिन है।

(ह०) तहसीलदार

❀ ❀ ❀

आचार्य द्विवेदी जी को अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था। यह मैं ऊपर लिख चुका हूँ। तत्कालीन जिलाधीश ने जब उनके अंग्रेजी के फैसले देखे, तो उन्हें अत्यधिक आश्चर्य हुआ। जिलाधीश महोदय ने अपने १३-१-३४ के निरीक्षण में आश्चर्य प्रकट करते हुए लिखा—"......गाँव के बाहर मैंने एक पुल का निरीक्षण किया, जिसे पंचायत ने नाले के ऊपर अपने खर्चे से बनाया है। सरपंच पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी यद्यपि संस्कृत और हिन्दी के स्कालर हैं; किन्तु मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे पंचायत के फैसले अंग्रेजी में लिखते हैं। उनके संरक्षण में पंचायत का कार्य बहुत ही सुनियोजित ढंग से चल रहा है।"

आचार्य द्विवेदी जी के संरक्षण में ग्राम-पंचायत दौलतपुर अब तक विशेष ख्याति अर्जित कर चुकी थी। उस की कर्मठता एवं कार्य-कुशलता का प्रख्यापन दूर-दूर तक हो गया था। वह एक आदर्श पंचायत के रूप में गतिशील थी; जिस का आभास हमें परगनाधीश डलमऊ के २८-२-३५ के निरीक्षण में मिलता है—"यह एक आदर्श पंचायत है। इस के पक्ष में जनमत बहुत ही अच्छा है। आचार्य पं० महाबीर जी के व्यक्तित्व के आधार पर यह गतिशील है। द्विवेदी जी एक प्रख्यात विद्वान हैं। वे यहाँ अवकाश-प्राप्त जीवन व्यतीत कर रहे हैं। पंचायत का कार्य वह केवल जन-सेवा की भावना से प्रेरित हो कर ही संभाले हैं।" इन्हीं परगनाधीश महोदय ने आगे लिखा—"सरपंच पं०

महावीर प्रसाद द्विवेदी वृद्ध होते हुए भी जिस उत्साह से पंचायत का कार्य करते हैं, वह प्रशंसनीय है। वास्तव में पंचायत की इस अभूतपूर्व सफलता का श्रेय इन्हीं को है।"

आगंतुकों, अधिकारियों एवं जनता ने अपने प्रशंसापत्रों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि पंचायत, दौलतपुर एक सर्वश्रेष्ठ पंचायत है। वह द्विवेदी जी के संरक्षण में आशातीत सफलता प्राप्त कर चुकी है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदी जी में—ग्रामोत्थान एवं जन-सेवा की कितनी प्रबल भावना थी। अब अंत में मैं तहसीलदार डलमऊ का ३०-१-३६ का एक और उद्धरण प्रस्तुत कर देना चाहता हूँ, जिसके लिखने में उन्होंने कलम ही तोड़ दी थी। उन्होंने पंचायत के कार्यों का विवेचन करते हुए लिखा था :—

"यह इस पंचायत का सौभाग्य है कि इसे अखिल भारतीय ख्याति का सरपंच मिला है। मुझे विश्वास है कि द्विवेदी जी आगामी वर्षों में भी पंचायत को—अपना योगदान देते रहेंगे। पंचायत-क्षेत्र के सभी ग्रामीणों का उन के प्रति सम्मान एवं विश्वास देख कर लगता है कि यह कहावत गलत है कि एक बहादुर आदमी अपने अनुचरों के बीच में बहादुर नहीं होता। 'The hero is no hero to his valet, has been falsified.'

आचार्य द्विवेदी जी, सचमुच ही ऐसे ही हीरो थे। वह अपने जीवन के हर क्षेत्र में हीरो ही रहे। सफलता उनकी दासी की भांति नत-मस्तक खड़ी रही। वह शान के साथ अपने पथ पर बढ़ते चले गये। इस सफलता का रहस्य उन की कर्मठता एवं लगन को है, जो जीवन की अन्तिम साँस तक उनके साथ रही।

●●●

सरपंची के सत्रह-वर्ष

'सरस्वती' का लगभग बीस वर्ष तक सफलतापूर्वक सम्पादन करने के पश्चात् स० १६७८ में आचार्य द्विवेदी जी ने अवकाश ग्रहण किया। यह समय संभवतः १६२१ का था। इसके बाद वह स्वतंत्र रूप से लिखने लगे थे। 'सरस्वती' के सम्पादन-काल में ही उन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित कर ली थी। मैं यह लिख चुका हूँ कि इसी समय 'विलेज पंचायत एक्ट' लागू हुआ। द्विवेदी जी १९२२ ई० में सर्वप्रथम ग्राम-पंचायत दौलतपुर के सरपंच नियुक्त हुए। सन् १९२२ से १६२६ तक की पंचायत का रूप कैसा था? उसने कौन-कौन-से कार्य किये? इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं छोड़ा जा सकता; क्योंकि इन पांच वर्षों से संबंधित एक भी कागज उपलब्ध नहीं है। जहाँ तक मेरा अनुमान है, या तो वे नष्ट हो चुके हैं या कोई जिज्ञासु उन्हें उठा ले गया है। हाँ, तत्संबंधी पंचायत की बैठकों के सूचना-पत्रों की कुछ प्रतियाँ अवश्य मिलती हैं, जिन्हें देखने से पता लगता है कि १६२२ में द्विवेदी जी ने पाँच-छः बैठकें की थीं। चूंकि सूचना-पत्र क्रम से नहीं लगे हैं, अतः यह भी संदेह होता है कि वे नष्ट हो गये हैं। हो सकता है कि बैठकें अधिक हुई हों; किन्तु कोई लिखित प्रमाण न होने के कारण मैं इस विषय पर प्रकाश

छोड़ने में अपने को असमर्थ पा रहा हूँ। सन् १६२२ में पांच ग्रामों को मिला कर जो पंचायत बनी, उसमें सरपंच सहित कुल ६ सदस्य थे। यह पंच पाँच ग्रामों के प्रतिनिधि थे, जिनके नाम इस प्रकार है :—

१. श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी—सरपंच
२. श्री विसेसर दुबे पंच
३. श्री बद्री पाण्डेय ,,
४. श्री व्रजभूषण वाजपेयी ,,
५. श्री शिवगोपाल मिश्र ,,
६. श्री चन्द्रपाल सिंह ,,

दौलतपुर पंचायत में सन् १९२२ से १९२५ तक उक्त सदस्य ही लगातार कार्य करते रहे। १९२६ में श्री विसेसर दुबे किन्हीं कारणों के हट गये। उनके हटने के बाद केवल चार सदस्यीय पंचायत कार्य करती रही। अक्तूबर १६२६ में श्री विसेसर दुबे के स्थान पर श्री चन्द्रिकाप्रसाद तिवारी का मनोनयन हुआ। श्री चन्द्रिका प्रसाद के आते ही श्री व्रजभूषण वाजपेयी भी हट गये। पंचायत में फिर केवल चार सदस्य रह गये। यही चारों सदस्य लगातार कई वर्षों तक कार्य करते रहे। १६२७ से पंचायत दौलतपुर के कागज उपलब्ध हैं। सन् १६२७ से १६३६ तक पंचायत विशेष रूप से क्रियाशील रही है। जिसका लेखा-जोखा निम्नांकित है :—

सन् १६१७ की पंचायत

सन् १९२७ की की पञ्चायत में उक्त चार सदस्य ही थे। वर्ष भर में पंचायत ११ बैठकें हुईं। पंचायत ने १४ माल तथा ७ फौजदारी के मुकदमों का निर्णय किया। इस वर्ष पंचायत का निरीक्षण तहसीलदार, परगनाधीश और नायब तहसीलदार ने किया। अधिकारियों ने अपने निरीक्षण में पंचायत का विस्तृत विवेचन करते हुए उसके कार्यकी प्रशंसा की। इस वर्ष पंचायत को ६० रु० सरकारी सहायता प्राप्त हुई।

सन् १६२८

इस वर्ष पंचायत में सदस्य संख्या ६ हो गई। सर्वश्री बलभद्र सिंह तथा चन्द्रिका सिंह नामक दो सदस्य और बढ़ गये। वर्ष भर में पंचायत की १४ बैठकें हुईं। आचार्य द्विवेदी जी ने उक्त सभी बैठकों में भाग लिया। पंचायत में इस वर्ष १६ फौजदारी तथा ७ माल के मुकदमे दायर हुए। इस वर्ष पंचायत का निरीक्षण परगनाधीश और तहसीलदार ने किया। वर्ष भर में पंचायत की आय १३७ रु० ६ आने ४ पाई रही।

सन् १६२६

इस वर्ष पंचायत की ४३ बैठकें हुईं। उक्त सदस्यों के अतिरिक्त पंचायत में श्री हजारी नाई नामक एक सदस्य और बढ़ गया। पंचायत ने ३० माल तथा ३६ फौजदारी के मुकदमों का निर्णय किया। पंचायत की आय गत वर्ष की अपेक्षा बढ़ कर २०५ रु० ११ आने ६ पाई हो गई। पंचायत का निरीक्षण परगनाधीश ने दो तथा तहसीलदार ने एक बार

किया। दिनांक ८-१२-२९ को जिलाधीश ने पंचायत के कार्यों की प्रशंसा करते हुए उस की गति पर संतोष व्यक्त किया।

सन् १९३०

१९३० में पंचायत की सब से अधिक अर्थात् वर्ष भर में ६६ बैठकें हुईं। द्विवेदी जी ने इन सभी बैठकों में भाग लिया। इस वर्ष फौजदारी के ५७ तथा माल के २८ मुकदमों को विचारार्थ स्वीकार किया गया। कार्य अधिक बढ़ जाने के कारण पंचायत केवल ५५ मुकदमों का निर्णय कर सकी। माल के २८ मुकदमों में १७ में सुलह हो गई। १० मुकदमे खारिज कर दिये गये। केवल एक शेष रहा। इस वर्ष पंचायत ने सफाई का कार्य भी किया। पुराने कुओं की मरम्मत भी कराई गई। जिलाधीश ने पंचायत का निरीक्षण किया।

सन् १९३१

इस वर्ष पंचायत की ४१ बैठकें हुईं; जिनमें से ४० बैठकों में आचार्य द्विवेदी जी ने भाग लिया। पंचों की उपस्थिति ३० से ले कर ८० प्रतिशत रही। श्री बलभद्र सिंह ने वर्ष भर में केवल एक बैठक में भाग लिया। पंचायत में २२ फौजदारी तथा १५ माल के मुकदमें दायर हुए; जिनमें सभी का फैसला हो गया। इस वर्ष जिलाधीश ने ४-१२-३१ को पंचायत का निरीक्षण किया तथा उस की प्रशंसा की।

सन् १९३२

यह वर्ष पंचायत के निर्माण-कार्यों का वर्ष रहा। पशुगृह खोला गया तथा पंचायत ने अपने अनुदान पर एक चिकित्सालय की स्थापना की। उक्त चिकित्सालय में आयुर्वेदिक एवं एलोपैथिक दोनों प्रकार की औषधियों के मुफ्त वितरण की व्यवस्था की गई। इस वर्ष पंचायत की ५७ बैठकें हुईं, जिनमें ५५ बैठकों में द्विवेदी जी ने भाग लिया। पंचायत ने ३८ फौजदारी तथा २३ माल के मुकदमे किये। जुर्माने से इस वर्ष केवल १०० रु० वसूल हुआ। पंचायत का निरीक्षण तहसीलदार तथा परगनाधीश ने किया।

सन् १९३३

इस वर्ष पंचायत ने ग्राम चिन्ताखेरा, खेमान-खेरा और हरीपुर में सफाई तथा कुओं की मरम्मत करानी चाही। मरम्मत का अनुमानित व्यय लगभग १९० रु० था। आधी धनराशि पंचायत व्यय करने को तैयार थी। शेष धन के लिये जन-स्वास्थ्य-विभाग को लिखा गया। वर्ष भर में पंचायत की ६१ बैठकें हुईं। सभी बैठकों में द्विवेदी जी उपस्थित रहे। पंचायत में ३० मुकदमे फौजदारी तथा २८ माल के दायर हुए। आचार्य द्विवेदी जी ने दौलतपुर के श्री वीरभद्र मिश्र के उस मकान की शिकायत पंचायत अधिकारियों से की, जो उनके मध्यप्रदेश चले जाने से गिर गया था। मकान के खंडहरों में चोरों ने छिपने का अड्डा बना लिया था, जिससे गाँव की

सुरक्षा खतरे में पड़ गई थी। फलस्वरूप आदेश हुआ कि मालिक मकान श्री वीरभद्र मिश्र को, जो कि इस समय जबलपुर में रहते हैं—Notification No., 753—11/IX—136 under Sec. 174 (2) (c) of the U. P. D. B. Act के अनुसार नोटिस दी जाये।

सन् १९३४

इस वर्ष पंचायत ने ६८ बैठकें की। यह संख्या अब तक हुई बैठकों में सबसे अधिक थी। उनमें से ६५ बैठकों में द्विवेदी जी ने भाग लिया। इस वर्ष फौजदारी के ४० तथा माल के ४९ मुक़दमे पंचायत में दायर हुये; जिनमें से सभी का निर्णय हो गया। पंचायत का अधिकार-क्षेत्र बढ़ा दिया गया था। सदस्यों की संख्या भी श्री जोधा अहीर के मनोनयन से ७ हो गई थी। श्री जोधा अहीर की उपस्थिति सबसे कम थी। जिलाधीश ने अपने निरीक्षण-नोट में उन्हें सचेष्ट करते हुए लिखा—"He should be more punctual."

पंचायत ने इसी वर्ष अपने व्यय से गाँव के बाहर एक पुल का निर्माण कराया। पंचायत का निरीक्षण जिलाधीश, परगनाधीश तथा तहसीलदार ने किया। उक्त सभी अधिकारियों के निरीक्षण में पंचायत की गति-विधि पर पूर्ण सन्तोष प्रकट किया।

सन् १९३५

इस वर्ष पंचायत ने अपना ध्यान गाँव की सफाई तथा शिक्षा की ओर विशेष रूप से लगाया। पंचायत ने वर्ष भर

में ६९ बैठकें करके अपने इतिहास में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। इनमें से ६८ बैठकों में द्विवेदी जी ने भाग लिया। फौजदारी तथा माल के क्रमशः ३० और २२ मुकदमों का निर्णय किया गया। पंचायत के कार्यों की प्रशंसा परगनाधीश तथा तहसीलदार ने मुक्तकंठ से की। उन्होंने अपने निरीक्षण-नोट में यह आशा भी व्यक्त की कि आचार्य द्विवेदी जी जन-सेवा की जिस पवित्र-भावना को ले कर यह कार्य कर रहे हैं, उसे उसी प्रकार करते रहेंगे।

तहसीलदार ने तो यहाँ तक लिखा—"मैं यह सत्यतापूर्वक कह रहा हूँ कि वास्तव में पंचायतों की स्थापना इस पंचायत की भाँति कार्य करने के लिए हुई है।"

सन् १९३६

यह वर्ष द्विवेदी जी के सरपंच-जीवन की कर्मठता का संभवतः अंतिम वर्ष था; क्योंकि १९३६ के पश्चात् पंचायत का कोई महत्वपूर्ण कार्य दृष्टिगोचर नहीं होता। यों, कुछ लोगों का कथन है वह जीवन-पर्यन्त दौलतपुर के सरपंच रहे और मृत्यु के कुछ समय पूर्व उन्होंने पंचायत का चार्ज श्री कुंदनलाल जी को दे दिया था। हो सकता है, इस वर्ष के पश्चात् ही द्विवेदी जी का स्वास्थ्य काफी गिर गया हो। इसका संकेत भी परगनाधीश के निरीक्षण-नोट में इस प्रकार मिलता है—"द्विवेदी जी वृद्धावस्था में भी पंचायत के कार्य में विशेष अभि-रुचि रखते हैं।" बाद में इसी संकेत को अधिक स्पष्ट करते

हुए तहसीलदार ने लिखा—"मुझे विश्वास है कि वह आगामी वर्षों में भी पञ्चायत का सफलतापूर्वक संचालन करते रहेंगे।" उक्त दोनों उद्धरणों से यह परिलक्षित होता है कि संभवतः द्विवेदी जी ने वृद्धावस्था होने के कारण पञ्चायत का कार्य संभालने में असमर्थता प्रकट की होगी। उसी पर अधिकारियों ने उनसे, इस प्रकार का आग्रह किया होगा। इस वर्ष पंचायत ने ४६ बैठकें कीं, जो पिछले चार वर्षों की तुलना में कम थी। इनमें से द्विवेदी जी ने ४३ बैठकों में भाग लिया। फौजदारी के ३६ तथा माल के १७ मुकदमों का निर्णय पञ्चायत ने किया।

सन् १९३७-३८

इन दोनों वर्षों से सम्बन्धित न तो पंचायत के फैसले ही उपलब्ध हैं और न अन्य कोई कागज! हाँ, सूचना-पत्र मौजूद हैं। उन्हें देखने से पता लगता है कि आचार्य द्विवेदी जी ने १९३७ तथा ३८ में भी कार्य किया था। १९३८ के जो सूचना-पत्र प्राप्त हुए हैं, उनमें अन्तिम यह है:—

"पंचान, पंचायत दौलतपुर!

२४ जून, ३८ शुक्र को २ बजे नालिश सुनने पंचायत में हाजिर आइये।

(ह०) म० प्र० द्विवेदी

२०-६-३८

द्विवेदी जी का यह अन्तिम सूचना-पत्र २० जून १९३८ को प्रसारित हुआ था। लगता है, इसके बाद ही वह बीमार पड़ गये थे !

इस प्रकार हम देखते हैं कि १९२२ से १९३६ तक अर्थात् १५ वर्षों की लंबी अवधि के भीतर उन्होंने युग-युग से चली आनेवाली ग्रामीण परम्परा को एक नया मोड़ दिया। सन् १९२७ से १९३६ तक की अवधि में पञ्चायत ने कुल ४७६ बैठकें कीं, जिनमें ४६६ बैठकों में द्विवेदी जी उपस्थित रहे। पञ्चायत की बैठकों में सरपञ्च की उपस्थिति का यह अभूत-पूर्व कीर्तिमान है। इसी अवधि में पञ्चायत ने ३२२ फौजदारी तथा २२६ माल के मुकदमों का निर्णय किया। उपर्युक्त आँकड़ों के आधार पर दौलतपुर पंचायत का जो संक्षिप्त इतिहास मैंने प्रस्तुत किया है, वह पंचायत की कर्मठता, गतिशीलता, एवं लगन के साथ-साथ द्विवेदी जी के महान् व्यक्तित्व एवं उन की अभिरुचि का भी प्रतीक है।

• • •

आचार्य द्विवेदी : अंतिम क्षणों में

"आप अपना जीवन चरित्र क्यों नहीं लिखते ?"

आचार्य जी ने उक्त प्रश्न सुनते ही शीश ऊपर उठाया। व्यथा से उन का संपूर्ण शरीर तड़प रहा था। देह कसमसा उठी। मुखमंडल पर एक अलौकिक आभा चमक कर विलीन हो गई। स्वाभिमान उभर आया। उन्होंने करवट बदल कर प्रश्न-कर्त्ता की ओर निहारा। श्री यज्ञदत्त का हृदय डोल उठा। उन्होंने अपनी निगाहें झुका लीं। वह द्विवेदी के तेज को न संभाल सके। उन्हें लगा—'जैसे कोई अपराध हो गया हो।' द्विवेदी जी का अंतस इस प्रश्न से झकझोर उठा था। वह यथावत् निर्निमेष नयनों से श्री यज्ञदत्त को कुछ क्षण तक देखते रहे। फिर, गंभीर मुद्रा में बोले—"मेरी जीवनी में क्या रक्खा है ?"

यह उस समय की बात है, जब मृत्यु के कुछ समय पूर्व आचार्य जी बीमार पड़े थे। काल का कराल-चक्र चल रहा था। मृत्यु धीरे-धीरे अपना काला आंचल फैलाती हुई बढ़ रही थी। हिन्दी-साहित्य का महारथी शीघ्र ही उस तमस अंतराल में तिरोहित होनेवाला था। आगत आशंकाओं से भयभीत हो कर ही श्री यज्ञदत्त ने उक्त प्रश्न किया था। वह यह जानते थे कि आचार्य जी अपना जीवन-चरित्र स्वयं तो लिखेंगे नहीं; फिर भी,

राजी हो जायँ और चारपाई पर पड़े-पड़े ही बोलते चलें, तो मैं उसे लिपि-बद्ध कर डालूँ। यह कार्य यदि अभी न हुआ, तो कभी भी न होगा। जीवन भर उस का अभाव खटकता रहेगा। अभी अवसर है। यही सोच कर उन्होंने पुनः दुस्साहस किया—

"यदि आप न लिखें, तो मुझे ही बताते जायँ, मैं लिखता जाऊँ?"

"क्यों?" द्विवेदी जी ने पुनः प्रश्न किया—"क्या मरने के बाद लोग किसी की जीवनी नहीं लिखते।"

इस प्रश्न से श्री यज्ञदत्त जी के माथे पर पसीना आ गया। पर, वह हार माननेवाले नहीं थे। उन्होंने दृढ़ता से कहा—"मैं आपकी जीवनी स्वयं लिखना चाहता हूँ, मुझे मैटर दीजिए।"

आचार्य जी इतना सुनते ही बरस पड़े। बोले—"तुमने कभी छोटी-मोटी कोई पुस्तक भी लिखी है? जीवनी क्या लिखोगे? बीछी का मंत्र नहीं जानते, साँप की बिल में हाथ घुसेड़ने को तैयार हो।"

श्री यज्ञदत्त जी मौन हो गये।

आज ऐसा लगता है कि द्विवेदी जी की आत्मकथा सचमुच साँप की बिल है। उसी बिल में हमारे 'भुजंग-भूषण' का निवास था। चाहे जितनी खोज की जाय, उस बिल की गहराई का पता ही नहीं चलता। साधारण आदमी का यह काम भी नहीं है कि वह उसके धरातल तक पहुँच सके। आत्मकथा लिखना तो अलग की बात है।

इस घटना के पश्चात् द्विवेदी जी पुनः बीमार पड़े। इधर कई वर्षों से उनका स्वास्थ्य लगातार खराब चल रहा था। कुछ तो जीवन की चिंताएँ, कुछ साहित्यिकों के प्रहार—दोनों ने मिल कर उन्हें जर्जर कर डाला था। अनेक बार वह मृत्यु के मुख से निकल चुके थे। अब वह काफी शक्तिहीन हो चुके थे। शरीर खोखला हो गया था। भोजन में केवल लौकी की तरकारी, दलिया और थोड़ा-सा दूध लेते थे। दवाइयाँ खाते-खाते अब ऊब चुके थे। सच पूछिये, तो औषधियों पर अब उनका विश्वास ही नहीं रह गया था। पहले भी प्राकृतिक चिकित्सा ही उनके जीवन का आधार थी। उसी से वह छोटी-छोटी बीमारियाँ दूर किया करते थे। समय की पाबन्दी, स्वल्पाहार एवं नियमितता ने ही उन्हें इतना जीवन प्रदान किया था। बुढ़ापे में ज्यों-ज्यों उन का स्वास्थ्य गिरता गया, स्मरण-शक्ति भी क्षीण होती गई। ऐसी स्थिति में भी वह लिखने-पढ़ने में आलस्य न दिखाते थे।

अक्तूबर १९३८ में उन की बीमारी बढ़ गई। 'कोष्ठ-बद्धता' के वह पुराने रोगी थे। दिन में तीन-चार बार शौच जाया करते थे। अब 'जलोदर' भी हो गया था और उसके साथ-साथ सूखी खुजली पूरे शरीर में फैल गई थी। खुजली धीरे-धीरे इतनी बढ़ी कि वह आजिज़ आ गये। पहले तो आयुर्वेदिक दवायें करते रहे। जब लाभ न हुआ, तो होम्योपैथिक दवाओं की शरण ली। उससे भी कोई लाभ न दिखाई पड़ा। खुजली बढ़ती ही गई। भूख तो लगती ही न थी। दलिया-

तरकारी भी छूट गई। एक ग्रास अन्न मुख में जाते ही कै हो जाती थी। बड़ा ही कष्ट-प्रद जीवन चल रहा था। यही दशा उन की अक्तूबर के अंत तक रही। ऐसी स्थिति में भी वह पत्रों का उत्तर बराबर देते रहते। लोगों से मिलते-जुलते, बातें भी करते और अपना परामर्श भी देते। जहाँ तक हो सकता, अपनी बीमारी के समाचार को अपने तक ही सीमित रखते थे। २०-१०-३८ को, उन्होंने महाकवि 'हरिऔध' जी को जो पत्र लिखा, उसमें अपनी अस्वस्थता का उल्लेख तक नहीं किया। बीमारी दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही गई। बीमारी के साथ-साथ खुजली भी उग्र रूप धारण कर चुकी थी। अंत में विवश हो कर उन्होंने अपने निकट संबंधी और रायबरेली के प्रसिद्ध डाक्टर श्री शंकर दत्त अवस्थी को पत्र लिखा। द्विवेदी जी का यह अंतिम पत्र था। इसके बाद उन्होंने लेखनी नहीं उठाई। यह पत्र अत्यंत मार्मिक एवं हृदय-विदारक है। पढ़ते ही नयनों में उनके दुखद जीवन का चित्र झूम उठता है। स्व० डाक्टर शंकर दत्त अवस्थी के पास यह अंतिम पत्र एक अमूल्य निधि की भांति सुरक्षित था। उन्हीं की कृपा से मैंने उस की प्रतिलिपि की थी। आज अपने पाठकों एवं हिन्दी-जगत् के समक्ष द्विवेदी जी का यह अंतिम-पत्र रखते हुए मेरी पलकें सजल हो रही हैं। पत्र यों था :—

दौलतपुर,
रायबरेली
७-११-३८

श्रीमान् अवस्थीजी को,

सादर प्रणाम !

आपका तारीख ४ का कार्ड आज अभी सुबह मिला। मेरी हालत अच्छी नहीं है। अगर कमला किशोर दो-एक दिन बाद आवें, तो उनके साथ कृपा कर चले आइये। मुझे देख लीजिए। दो-एक दिन रहिए। पेट, छाती वगैरह की हालत का पता लगानेवाले यन्त्र, जो आप के पास हों, लेते आइयेगा। कुछ दवायें भी। खुजली के लिये कानपुर के डा० रामनारायण वर्मा ने, वैद्यों की भी सलाह से, शुद्ध गंधक बनाया था। वह कई रोज खाया। कुछ लाभ नहीं हुआ। 'मरिचादि तैल,' 'काशीसादि घृत' ने भी कुछ काम नहीं किया। कारबोलिक एसिड और तेल भी बेकार गया। अब सिर्फ सरसों का तेल मलाता हूँ।

मेरी खुजली किसी आंतरिक विकार का फल मालूम होती है। दो हफ्ते से दलिया-तरकारी भी नहीं खा सका। एक भी ग्रास पेट में जाते ही कै हो जाती है। सुबह, दोपहर, शाम को जरा-सा दूध, मुनक्के पड़ा हुआ लेता हूँ। वह भी बेमन। उसे भी देखते ही जी मचलाने लगता

है। जान पड़ता है मुझे जलोदर हो रहा है। पहले, दिन में ३-४ घूँट पानी पीता था। अब प्यास बहुत बढ़ गई है। पेट बेतरह फूला रहता है। बहुत भारीपन मालूम होता है। उठना-बैठना मुहाल है! चलना-फिरना बंद है। पेट गड़-गड़ाया करता है। पेशाब सुर्ख होता है। पाखाना ठीक-ठीक नहीं होता। लेटे, बैठे रहने से कम; खड़े होने से तथा चलने-फिरने से पेट का भारीपन बढ़ जाता है। यहाँ के वैद्य कुछ नहीं कर सकते। शाम-सुबह त्रिफला का चूर्ण खिलाते हैं।

कृपापात्र

म० प्र० द्विवेदी

पत्र पाते ही डा० शंकर दत्त दौलतपुर पहुंचे। वहाँ जा कर उन्होंने आचार्य जी की स्वास्थ्य-परीक्षा की। पेशाब बहुत कम पड़ गया था। यद्यपि उसमें 'अल्युमिन' एवं 'शूगर' नहीं जाती थी; फिर भी 'यूरेट' की मात्रा कम थी। पेट में पानी आ गया था। १५ नवम्बर तक डाक्टर साहब चिकित्सा करते रहे। कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। अंत में विवश हो, उन्होंने द्विवेदी जी को रायबरेली ले जाना उचित समझा। १६ नवम्बर को डाक्टर साहब द्विवेदी जी के भांजे कमला किशोर को साथ ले कर रायबरेली गये। वहाँ से मोटर का प्रबन्ध कर पुनः दौलतपुर आये। १८ नवम्बर को द्विवेदी जी सदा-सर्वदा के लिये दौलतपुर छोड़ कर रायबरेली की ओर चल पड़े। दौलतपुर

से रायबरेली तक का मार्ग कच्चा था। स्थान-स्थान पर गड्ढे थे। खाँचे तथा धूल से पूरी सड़क अस्त-व्यस्त थी। इस दुर्गम पथ में द्विवेदी जी का सम्पूर्ण शरीर झकझोर उठा। लोन नदी पार करते समय तो वह चीख पड़े थे। जब मोटर गड्ढों में पड़ती तो वह कराह उठते। किसी प्रकार सायंकाल चार बजे रायबरेली पहुँचे। यहाँ पहुँचते ही लोगों ने संतोष की साँस ली। द्विवेदी जी ने आहें भरते हुये कहा—"जीवन में इतना कष्ट कभी नहीं उठाया।"

रायबरेली पहुँचने पर द्विवेदी जी डा० शंकरदत्त जी के निवास-स्थान पर ही रुके। रात किसी प्रकार बीती। दूसरे दिन प्रातःकाल यहाँ सिविल सर्जन डा० जैन तथा व्यक्तिगत चिकित्सक डा० डे (Dey) का इलाज प्रारम्भ हुआ; किन्तु कोई विशेष लाभ नहीं प्रतीत हुआ। कष्ट बढ़ता ही गया। जलोदर अब उग्र रूप धारण कर चुका था। पेट में काफी पानी आ गया था। ४ दिसम्बर को डा० जैन ने पेट का पानी निकाला। ५-६ सेर पानी निकला। थोड़ा-सा लाभ हुआ। भूख भी खुली। फलों का रस तत्काल ही दिया गया। पर यह जठराग्नि क्षणिक थी। इन उपचारों का स्वास्थ्य पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। लोगों में निराशा एवं बेचैनी छाने लगी। कानपुर से डा० रामनारायण शर्मा को बुलाया गया। शर्मा जी द्विवेदी जी के पुराने चिकित्सक थे। उनके उपचार से द्विवेदीजी को सदैव लाभ ही होता था; किन्तु इस बार उन की भी

औषधियाँ बेकार गईं। वह कोई चमत्कार न दिखा सकीं। डा० शर्मा विवश हो गये। धीरे-धीरे मौत का खूनी पंजा बढ़ता ही गया। सभी उपचार व्यर्थ गये। द्विवेदी जी रह-रह कर बेहोश होने लगे। लोगों की चिंता बढ़ी। डाक्टरों का दल परेशान हो उठा। जीवन के कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। डाक्टर शंकरदत्त जी ने दुखी मन से पूछा—"क्या आप दौलतपुर जाना चाहते हैं ?"

यह प्रश्न सुनते ही आचार्य जी के नयन भर आये। शरीर में रोमांच-सा हुआ। कुछ चेतना जगी। उन्होंने अपने शरीर की सम्पूर्ण शक्ति समेट कर दृढ़ शब्दों में उत्तर दिया—"दौलतपुर में क्या धरा है ?" धीमे-धीमे स्वर में कुछ और शब्द सुनाई पड़े—"मैं कही आऊं...जाऊँगा नहीं। जो होना है, यहीं होगा। यह मेरे प्रस्थान का समय है, अवस्थी जी...!" उनके इस उत्तर से सभी का अंतस डोल उठा ! १९ दिसम्बर को बेहोशी अधिक बढ़ गई। डा० बद्रीप्रसाद होम्योपैथ ने कुछ दवायें दी। देखा-भाला। यथाशक्ति उपचार किया। किसी प्रकार दिन तो बीत गया; रात होते ही कष्ट और बढ़ गया। रात भी तड़पते, बिलखते बीत गई। प्रभात हुआ। २० दिसम्बर, १९३८ का यह प्रभात उनके जीवन का अंतिम प्रभात था ! पेट में बहुत पानी आ गया। रह-रह कर बेहोशी बढ़ने लगी। दर्द चरम सीमा पर था। धीरे-धीरे जीवन की झिलमिलाती दीपशिखा महाशून्य में मिलने की तैयारी करने-लगी। साँझ

हुई। पेट बहुत ही फूल गया था। साँस की गति बदल चुकी थी। सब लोग आशंका से चारपाई के निकट बैठे थे।

अर्द्ध-रात्रि बीत चली थी ! बेहोशी अब तक वैसी ही थी। सभी प्रकार के उपचार करके डाक्टर थक गये। क्षण-क्षण हिचकियाँ आ रही थीं। सब लोगों की आँखों में आँसू आ गये। डा० शंकरदत्त जी ने नाड़ी की गति देखी। वह काफी क्षीण हो चुकी थी। डाक्टर साहब ने उदास मन से परिवार के लोगों को ओर दृष्टिपात किया। उपस्थित जन-समूह डाक्टर साहब के चेहरे पर अंकित भाव पढ़ कर आकुल हो उठा। ठीक ४ बजे के लगभग द्विवेदी जी को एक हिचकी आई। उसी हिचकी के साथ मुख से कुल्ला भर पानी गिरा ! पानी गिरते ही वह मुर्च्छित हो गये। जो समय उनके दैनिक जीवन में प्रातः-काल उठने का था, ठीक उसी समय वह सदा-सर्वदा के लिये सो गये। प्राण-पखेरू उड़ गये। 'आत्माराम' का केवल पिंजड़ा पड़ा था !

प्रभात हुआ। आचार्य जी का शव मोटर से दौलतपुर लाया गया। मृत शरीर पर एक बार पुनः जन्मभूमि के रज-कण पड़े। दौलतपुर क्या, चारों ओर कुहराम मच गया। सहस्रों नर-नारी, आबाल, वृद्ध, रोते-चीखते, बिलखते-चिल्लाते शव-यात्रा में चल पड़े। अंतिम-दर्शन के लिये भीड़ लग गई। तीसरे प्रहर—पतित-पावनी सुरसरि के पावन-तट पर हिन्दी-

साहित्य के भीष्म पितामह, लेखकों के पथ-प्रदर्शक, कवियों के निर्माता, पत्रकारों के प्रकाश-स्तंभ एवं पंचायतों के प्रथम सरपंच का भौतिक शरीर जल कर छार हो गया। चिता की लपटें बुझ गई। केवल राख का ढेर शेष रह गया।

२१ दिसम्बर, १९३८ का दिन हिन्दी-साहित्य के इतिहास में वज्रपात का दिन है !

• • •

उपसंहार

आचार्य द्विवेदी जी को भले ही कोई आचार्य कहे, विद्या-वाचस्पति कहे, अथवा उन्हें आधुनिक हिन्दी-साहित्य के निर्माता की उपाधि से विभूषित करते हुए उनकी समता 'पाणिनि' और 'पातंजलि' से करे; किन्तु जहाँ तक मैं समझता हूँ—वह एक ऋषि थे। ऋषि ही नहीं, महान् कर्मयोगी थे। इसीलिये अपने नाम के पूर्व लगनेवाले 'आचार्य' शब्द पर उन्होंने लिखा था—"मुझे आचार्य की पदवी मिली है। क्यों मिली है, मालूम नहीं! कब, किसने दी है यह भी मुझे मालूम नहीं। मालूम सिर्फ इतना ही है कि मैं बहुधा इस पदवी से विभूषित किया जाता हूँ। विचार करने पर मेरी समझ में एकमात्र कारण मुझ पर कृपा करनेवाले सज्जनों का अनुग्रह ही जान पड़ता है। जो जिस का प्रेम-पात्र होता है—उसे, उसके दोष नहीं दिखाई पड़ते। नगरों की बात जाने दीजिए, देहात में माता-पिता अपने लूले, लँगड़े, काने, अन्धे, जन्म-रोगी और महाकुरूप लड़कों का नाम 'श्यामसुन्दर', 'चारुचन्द्र' और 'नयनसुख' रखते हैं। जिन के कब्जे में अंगुल भर जमीन नहीं है, वे पृथ्वी-पाल कहाते हैं और जिन के घर में टका नहीं है, वे 'करोड़ीमल' कहे जाते हैं।" द्विवेदी जी के उक्त कथन पर—"भवन्ति

नम्रस्तरवः फलोद्गमैः" की उक्ति स्मरण हो आती है। जो वास्तव में किसी ऋषि का ही लक्षण है।

मैंने निवेदन किया न, कि मैं उन्हें ऋषि कहने की अपेक्षा 'कर्मयोगी' कहना अधिक उचित समझता हूँ। दृढ़ता, निर्भीकता, सत्यता, निष्पक्षता और उत्तरदायित्व-पूर्ण उदारता, इन्हीं पाँच शब्दों पर उनके जीवन का कर्मयोग आधारित था। पत्रकार, लेखक, कवि, समालोचक, सुधारक, सम्पादक और सरपंच, जिस रूप की भी सफलता हम देखना चाहें, उसमें इन्हीं पाँच मंत्रों का समावेश मिलेगा। यही कारण है कि वह साहित्यिक और सामाजिक दोनों प्रकार की दलबन्दी के दलदल में नहीं फँस सके। वह आजीवन मानसरोवर के राजहंस की तरह नीर - क्षीर - विवेकी रहे। यही विवेक उन के चैतन्य की साधना है।

लोगों का कथन है कि जिस प्रकार विश्ववन्द्य पूज्य बापू जी किसी मिलनेवाले व्यक्ति से बात-चीत अथवा समय समाप्त होने पर 'बस खलास' कह कर उसे प्रस्थान करने का इशारा कर देते थे, ठीक उसी प्रकार द्विवेदी जी भी करते थे। वह अभ्यागत का स्वागत अपनी डिबिया से दो पान निकाल कर करते और वार्तालाप समाप्त होने पर उसे पुनः दो पान भेंट करते थे। ताम्बूल देना ही प्रस्थान का संकेत था। व्यर्थ की बकवास उन्हें पसन्द न थी। समय का दुरुपयोग करना तो वह जानते ही न थे। कभी-कभी तो किसी की विद्वता

पर इतना रीझ जाते थे कि उन्हें लघुता-गुरुता का ध्यान ही नहीं रहता था। आत्मविभोर हो कर नत-मस्तक हो जाते थे। वह सच्चे अर्थों में गुण-ग्राहक थे। विद्वानों का ही नहीं विद्यार्थियों का भी सम्मान करते थे। एक दिन की बात है, वह अपने कमरे में बैठे कुछ लिख रहे थे। उसी समय पर गाँव का एक लड़का उनसे कोई पुस्तक लेने गया। दो-बजे दिन का समय था। लड़का तीन बजे तक पुस्तक की प्रतीक्षा में पैठा रहा। द्विवेदी जी की लेखनी अनवरत रूप से चलती रही। लड़का नाराज हो कर लौट आया। बाहर आ कर उसने ऊपने मित्रों से कहा—"बड़े घमंडी हैं! मैं किताब लेने गया तो मेरी ओर देखा ही नहीं। कई बार मैंने कहा कि पं० जी 'मेघदूत' दे दीजिए, लेकिन पंडित जी, किताब देना तो दूर रहा, मुख से बोले भी नहीं!" लड़का अपने घर चला गया। संध्या समय जब द्विवेदी जी सैर करने निकले, तो एक मकान के सामने रुक गये। आवाज देने पर एक वयोवृद्ध सब्बन बाहर आये। द्विवेदी जी ने कहा—"ओझा, तुम्हारे लड़के ने किताब माँगी थी, उसे दे देना।" किताब का नाम सुनते ही लड़का बाहर निकला। उस समय उस की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा कि आचार्य जी स्वयं पुस्तक ले कर उसे घर पर देने आये। लड़का उन की विनम्रता से इतना प्रभावित हुआ कि उनके चरणों पर गिर पड़ा।

बच्चों के साथ ही नहीं द्विवेदी जी बड़ों से भी यही व्यवहार करते थे। हाँ, यदि वह साहित्य-साधक है तब तो वह उन का

'गुरु' ही है। जिनकी रचनाएँ सैकड़ों बार वह संशोधित कर चुके थे, उन्हें भी इतना सम्मान प्रदान करते थे कि वे आत्म-विभोर हो जाते। पं० किशोरीदास जी वाजपेयी की एक घटना का मैं अन्यत्र उल्लेख कर चुका हूँ। ऐसी ही दूसरी घटना कवि सम्राट् पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी से संबंधित है। आरा नागरी-प्रचारिणी-सभा ने 'हरिऔध' जी के अभिनंदन का आयोजन किया। द्विवेदी से न रहा गया। 'हरिऔध' जी की प्रशस्ति में उन्होंने संस्कृत का निम्नांकित श्लोक लिख कर सभा के पास भेज दिया—

"अयोध्यासिंह शर्म्माणमुपाध्याय कुलोद्भवम्,
साहित्यज्ञं, कविश्रेष्ठं, प्रणमामि पुनः-पुनः।

'हरिऔध' जी को जब यह बात ज्ञात हुई, तो उन्होंने लज्जा का अनुभव करते हुए द्विवेदी जी से श्लोक बदल देने की याचना की; परन्तु द्विवेदी जी नहीं माने। उन्होंने कहा—"मेरी यही आन्तरिक इच्छा है।"

इसी प्रकार सेमरी-राज्य के तालुकेदार श्रीलाल सुरेन्द्र-बहादुर सिंह के लघु-भ्राता स्व० वीरेन्द्रबहादुर सिंह की संस्कृत विद्वता पर मुग्ध हो कर द्विवेदी ने आशीर्वाद-स्वरूप दो-एक श्लोक नहीं, पूरी कविता रच डाली। श्री वीरेन्द्रबहादुर सिंह आयु में द्विवेदी से बहुत छोटे थे। उन्हें वह कविता-प्रशस्ति अच्छी न लगी। उन्होंने विनम्रता से कहा—"आचार्य जी, मैं आशीर्वाद चाहता हूँ, प्रशस्ति नहीं। मैं आपसे छोटा हूँ।"

"तुम छोटे हो !" आचार्य द्विवेदी जी ने उत्तर दिया—"लेकिन तुम्हारा गुण छोटा नहीं है।"

लाल साहब मौन हो गये। उस सुन्दर कविता का कुछ अंश यों है—

"कवीश्वरस्तवं प्रतिभास्थिरस्तवं,
साहित्य, शास्त्रे च कलाधर स्तवम्।
रसज्ञ, काव्यज्ञ, च विज्ञवर्य्य—
धन्योऽसि वीरेन्द्र बहादुरत्वम्॥"

कहने का तात्पर्य यह कि आचार्य द्विवेदी जी विद्वानों का आदर उन्हें सदैव अपने से बड़ा मानकर करते थे। भले ही वह उनसे आयु तथा विद्वता दोनों में छोटा हो। वह व्यक्ति के नहीं, उसकी प्रतिभा, उसके गुण एवं उसकी विद्वता के उपासक थे।

सुनता हूँ, किसी वस्तु के सदुपयोग की कला महापुरुष ही जानते हैं। इस संबंध में राष्ट्रपिता गांधी जी, विश्वकवि टैगोर, नैपोलियन बोनापार्ट, अब्राहिम लिंकन आदि के जीवन से बहुत कुछ सीखा जा सकता है। अनेक घटनाएँ भी इन महापुरुषों के जीवन की प्रसिद्ध हैं। छोटी-छोटी चीजों के सदुपयोग के विषय में द्विवेदी जी की भी यही स्थिति थी। उनके द्वारा लिखे गये पंचायत के फैसलों, आदेशों तथा सूचना-पत्रों को देखने से पता लगता है कि वह किस प्रकार के कागज का उपयोग करते थे। द्विवेदी जी सादा कागज बहुत कम खरीदते थे। वह प्रायः आये हुए पत्रों के लिफाफे, अखबारों के रैपर,

और एक तरफ सादी नोटिसों को चाकू से काट कर रख लेते थे। इन्ही कतरनों में वह प्रायः लिखा करते थे। उनकी फाइल में अखबारों एवं पत्रिकाओं के बाँसी कागज के रैपरों एवं पत्रों के लिफाफों पर लिखी हुई सैकड़ों कतरनें मौजूद हैं। इस का यह अर्थ नहीं कि उनके पास कागज की कमी थी, अथवा वह कंजूस थे। प्रत्युत वह वस्तुओं का सदुपयोग करने की कला जानते थे। यह उसी प्रकार का आदर्श है, जिस प्रकार महात्मा गांधी जी का दातून की फाड़न सुखा कर उसे चूल्हा जलाना। वास्तव में यह सब महापुरुषों के कार्य हैं, जिन्हें प्रत्येक वस्तु के सदुपयोग की चिन्ता रहती है। गांधी जी की तरह वह भी घड़ी टेंट में रखते थे। खादी तो नहीं पहनते थे; किन्तु गाढ़े के मोटे वस्त्रों का सदैव उपयोग करते थे। गाढ़े का कुर्ता, पायजामा तथा बंद गले का कोट उनकी पोशाक थी। इस पोशाक को अपनी विनोदी बोली में वह 'सूट' कहा करते थे।

आचार्य जी के कार्यों पर दृष्टिपात करने से ऐसा लगता है कि वह 'युग-स्रष्टा' थे। जीवन के जिस क्षेत्र में उन्होंने प्रवेश किया, वहीं सफलता उनके चरण चूमने लगी। भारतेन्दु हरिश्चंद्र के पश्चात् जिस युग को हिन्दी-साहित्य में 'द्विवेदी-युग' कहा जाता है, वह वास्तव में 'सृजन का युग' था। तिनके चुन-चुन कर राष्ट्र-भाषा हिन्दी का नीड़ बनाना था। यह कार्य द्विवेदी जी ने कुशलतापूर्वक सम्पादित किया। पता नहीं कितने कवियों, लेखकों एवं पत्रकारों ने उनके इस कार्य में योगदान किया। सरस्वती के

माध्यम से सभी साहित्यकारों ने एक कौटुम्बिक जीवन का उदाहरण प्रस्तुत किया। द्विवेदी जी उस परिवार के 'पुरखे' की तरह रहे। उन की डाँट-फटकार के साथ-साथ, स्नेहिल-भावना भी सब को मिलती रही। सभी अपनी रुचि के अनुसार सामग्री-चयन करते रहे। द्विवेदी जी उसमें काट-छाँट कर, उसे नीड़-निर्माण के अनुरूप बनाते रहे। हिन्दी का वर्तमान स्वरूप उसी परिश्रम का प्रतिफल है।

आचार्य द्विवेदी जी, जीवन के इतने व्यस्त क्षणों में, तथा हिन्दी-साहित्य का महान् उत्तरदायित्व सँभालने के बाद भी सत्रह वर्षों तक ग्राम-पंचायत दौलतपुर की सरपंची का भार संभाले रहे। यह उतना आश्चर्यजनक नहीं, जितना उन की पञ्चायत के कार्यों में दिलचस्पी। एक ऐसा व्यक्ति, जिसे द्विवेदी जी के साहित्यिक जीवन का ज्ञान न हो, वह उन के पञ्चायत के कार्यों का अध्ययन करने पर यही कहेगा कि आचार्य जी कुछ नहीं, केवल सरपञ्च ही थे; तथा उसे सम्पन्न करने में उन्होंने जीवन का पूरा समय दिया है। जब कि बात ऐसी न थी। सरस्वती से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् सं० १९७८ से १९८६ तक वह साहित्य-सृजन के साथ-साथ पञ्चायत का भी कार्य करते रहे। उनका लगभग ९५ प्रतिशत बैठकों में भाग लेना, मुकदमें सुनना, निर्णय देना, निर्माण-कार्य करना तथा घात-प्रतिघात सह कर पंचायत को आगे बढ़ाना, वास्तव में एक महान् कार्य था। पंचायत की सत्रह-वर्षों की सरपंची उनकी जागरूकता

एवं कर्मठता की झांकी मात्र है। वह एक महान् सरपञ्च थे। जीवन के अन्य पक्षों की तरह उन का यह पक्ष भी सबल, सशक्त एवं अपने-आप में पूर्ण था; इसीलिये मैं उन्हें किसी एक विषय का आचार्य कहने की अपेक्षा, सच्चे कर्मयोगी की संज्ञा देना उचित समझता हूँ; क्योंकि वह अपने जीवन के सभी पक्षों के आचार्य थे। जिस विषय में उन्होंने हाथ लगाया, उसे पूर्णता को पहुंचा दिया। चाहे वह साहित्यिक विषय हो या सामाजिक।

प्रयाग में 'द्विवेदी मेले' के अवसर पर महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ जी झा का विशाल जन-समूह के समक्ष आचार्य द्विवेदी जी के चरण-स्पर्श करने के लिये झुकना एक अभूतपूर्व घटना इन अर्थों में नहीं है कि द्विवेदी जी परोक्ष रूप से 'झा' महोदय के गुरु थे। प्रस्तुत उनका महत्व इन अर्थों में भी है कि आचार्य द्विवेदी जी जैसा कर्मयोगी जिस साहित्य, समाज और देश को मिला है—वह धन्य है !

ब्रिटिश-शासनकाल में, पराधीनता के जलते-तपते युग में आचार्य जी ने पंचायतों को जो कुछ दिया है, वह एक अमूल्य थाती है। उससे आज के पञ्चों, सरपञ्चों तथा पञ्चायतों को प्रकाश मिलता है। यह प्रकाश बालारुण सूर्य की उन किरणों की भांति है जिनका दिनमान आज पूर्ण यौवन पर है। सचमुच द्विवेदी जी पंचायतों के आदि-सरपञ्च हैं और उनके इस जीवन का प्रतीक दौलतपुर का वह पंचायतघर है, जिसकी नींव की प्रथम ईंट रखते हुए महामान्या श्रीमती महादेवी वर्मा जी ने १९५२ में कहा था—

"एक सूर्य का बिंब सम्पूर्ण विश्व को प्रकाश देता है। एक बादल का टुकड़ा पूरी धरती को तृप्त करता है, एक पुष्प सम्पूर्ण उपवन को सुवासित करता है; किन्तु उस सूर्य के बिंब, बादल के टुकड़े अथवा उपवन के पुष्प का कैसा स्मारक ? वे इन स्मारकों से परे हैं। असीम को जिस प्रकार सीमा में नहीं बाँधा जा सकता, उसी प्रकार द्विवेदी जी के सामाजिक कार्यों का मूल्यांकन इस छोटे-से पंचायत-घर द्वारा नहीं हो सकता। उनके सच्चे स्मारक तो वे कार्य हैं, जिन्हें उन्होंने समाज, देश और मातृ-भाषा की भलाई में किया है।"

महामान्या महादेवी वर्मा के उक्त शब्दों के साथ मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि आचार्य जी का जो रूप अभी तक देश के सामने था, उसमें इसकी कमी थी। वह केवल साहित्यकार का रूप था, सरपंच का नहीं ! आचार्य जी के इस महत्त्वपूर्ण, विस्मृत जीवन-पक्ष को मैंने उभारा है। उभार कर देश के समक्ष रक्खा है। मेरा विश्वास है, इससे आचार्य जी के जीवन के सभी पक्ष पूरे हो जाते हैं। मैं यह नहीं कह सकता कि इन दोनों पक्षों में कौन सबल था, कौन दुर्बल ! मैं तो यही कहूँगा कि यह दोनों पक्ष आचार्य जी के दाहिने-बायें हाथ हैं। कौन हाथ दाहिना है, कौन बायाँ—इसका निर्णय समय करेगा।

मैं तो आचार्य द्विवेदी जी को आदि-मानव 'मनु' की भाँति पंचायतों का 'आदि-सरपंच' समझता हूँ। मेरा विश्वाव है मैं अपनी जगह पर ठीक हूँ।

• • •

रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

C89:४३००९ 2
लि ६४ आ

आपके
उपयोग और रुचि की
नई और उत्कृष्ट पुस्तकें
आपको घर बैठे,
मिल सकती हैं—
कृपया
अपना पूरा पता हमें शीघ्र
लिख भेजें।
हमारी वृहत् सूची आपको
नियमपूर्वक मिलती रहेगी।

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो. बॉक्स नं. ७०, पिशाचमोचन
वाराणसी—१

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

पो. बॉक्स नं. ७०, पिशाचमोचन

वाराणसी-१.

मूल्य : ३.५० पैसे

मुद्रक : विद्यामन्दिर प्रेस (प्रा.) लि., मानमन्दिर, वाराणसी-१